Class 11

कक्षा 11

हिंदी साहित्य

अपरा

Vijik

अपरा

कक्षा–11 हिंदी साहित्य की प्रथम पुस्तक

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – अपरा (हिंदी साहित्य) कक्षा 11

संयोजक :– डॉ० आशीष सिसोदिया, सहायक आचार्य
हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर

लेखकगण :– 1. डॉ० वासुदेव प्रजापति, प्रांत संयोजक
पुनरुत्थान विद्यापीठ, जोधपुर
2. संजय कुमार शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा.वि. सतीपुरा, हनुमानगढ़
3. लोकेश्वर प्रताप सिंह, प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा.वि. धानक्या, जयपुर
4. केसर सिंह राठौड़, व्याख्याता
अमर शहीद सागरमल गोपा राज.उ.मा.वि.,
जैसलमेर

आभार

सम्पादक मंडल एवं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर उन सभी लेखकों का आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करता है जिनके अमूल्य सृजन एवं विचार इस पुस्तक में सम्मिलित किये गये हैं।

यद्यपि इस पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री का स्वत्वाधिकार का ध्यान रखा गया है फिर भी यदि कुछ अंश रह गये हों तो यह सम्पादक मंडल इसके लिए खेद व्यक्त करता है। ऐसे स्वत्वाधिकारी से सूचित होने पर हमें प्रसन्नता होगी।

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक – अपरा (हिंदी साहित्य) कक्षा 11

संयोजक – डॉ. आशीष सिसोदिया, सहायक आचार्य
हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर

सदस्य –
1. डॉ. दीपिका विजयवर्गीय, व्याख्याता
राजकीय स्नातकोत्तर महिला कॉलेज, चौमूं
जिला–जयपुर
2. डॉ. नवीन नन्दवाना, सहायक आचार्य हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
3. श्री संजय कुमार शर्मा
डाइट, हनुमानगढ़
4. श्री रमाशंकर शर्मा, व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, धौलपुर
5. श्री अशोक कुमार शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, रलावता, अजमेर
6. श्री रमाशंकर शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक
राजकीय वरिष्ठ उपाध्याय संस्कृत विद्यालय,
कुण्डगेट, सावर, अजमेर

भूमिका

प्रस्तुत संकलन 'अपरा' माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान की कक्षा ग्यारहवीं की हिंदी साहित्य विषय के अध्ययन–अध्यापन के लिए तैयार की गई है। संकलनकर्त्ताओं का यह प्रयास रहा है कि पुस्तक छात्रों के स्तरानुकूल रहे; बोर्ड की अपेक्षाओं के अनुसार बने और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप यथासंभव सभी विषय, विधाएँ, साहित्यकार आदि को संजोया जा सके। विधाओं के वैविध्य के साथ भाषा–शैली की विविधता, साहित्य में कालगत क्रम–विकास का साहित्यिक कृतियों के माध्यम से परिचय, विभिन्न रसों का स्तर व आवश्यकतानुसार प्रस्तुतीकरण का प्रयास इस संकलन में किया गया है।

कक्षा ग्यारहवीं साहित्य के विद्यार्थियों का प्रवेश-द्वार है। प्रयास यह रहा है कि पुस्तक सरलतम रहे और उन्हें कतिपय गद्य विधाओं की जानकारी और भिन्न–भिन्न लेखकों की शैली का भी परिचय हो जाए। बदलते परिवेश और नई तकनीकी के युग में साहित्य को कोई एक दिशा न देते हुए सहज मार्ग तय करने देना चाहिए। यह मार्ग जिन युग सत्यों से खाद–पानी लेकर बढ़ेगा, उन मूल्यों का भी समावेश करने का प्रयत्न हुआ है। पद्य भाग में प्राचीनता और नवीनता का समन्वय किया गया है। इस पुस्तक में जहाँ अपनेपन की सौंधी महक है वहाँ राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति भी है।

आज की सामयिक आवश्यकता राष्ट्रीय व सामाजिक भावों का उन्मेष, भारतीय अतीत के गौरव की तर्क पूर्ण व भावपूर्ण अभिव्यक्ति के माध्यम से छात्रों को अपने विगत वैभव से परिचित कराने का प्रयास, सामाजिक समरसता, समसामयिक विषयों यथा, विज्ञान, पर्यावरण को पर्याप्त स्थान देते हुए पाठ परिचय द्वारा पुस्तक को सुग्राह्य बनाया गया है। पुस्तक में नारी चेतना, राष्ट्रभक्ति, भारतीय ज्ञान–विज्ञान, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उभर रहे द्वन्द्व से मुक्ति के लिए भारतीय चिरंतन दृष्टियुक्त समाधान, साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्र निर्माण का दायित्वबोध आदि तत्त्वों को उभारा गया है। छात्रों के व्याकरणिक सुधार और विकास के साथ शब्दकोष का विकास, भाषा–शैली के विविध स्वरूपों से परिचय, लेखन का विकास और अभिव्यक्ति विकास आदि की दृष्टि से प्रश्नों की तदनुकूल रचना की गई है। इस पुस्तक में प्रत्येक पाठ के अंत में 'मानक हिंदी' की जानकारी देने के लिए कुछ बिंदु जोड़े गए हैं, जिसका उद्देश्य हिंदी लेखन में एकरूपता रखना है। यद्यपि इस पुस्तक में मानक हिंदी का अनुसरण किया गया है तथापि कहीं–कहीं पाठ की मूल भावना को ध्यान में रखते हुए परंपरागत वर्णमाला का प्रयोग किया गया है।

आशा है संकलन अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकेगा। पर्याप्त सजगता एवं संपूर्ण प्रयत्नों के उपरांत भी न्यूनताएँ निश्चित ही रही होंगी। हमारा निवेदन है कि उन न्यूनताओं की ओर इंगित करें जिससे इसमें यथोचित संशोधन परिवर्धन संभव हो सके। इसके लिए हम आपके बहुत आभारी रहेंगे।

अंत में हम उन सभी साहित्यकारों, लेखकों, कवियों के आभारी हैं जिनके पाठ, लेख, कविताएँ आदि इस संकलन में संगृहीत हैं।

संपादक मंडल

हिंदी साहित्य

विषय कोड : 21

समय 3.15 घंटे **पूर्णांक :100**

अधिगम क्षेत्र	अंक
हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	20
काव्यांग परिचय	20
अपरा– (आधार पुस्तक)	40
आलोक– (पूरक पुस्तक)	20

खण्ड–1

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास **20 अंक**

आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल का सामान्य परिचय (5 प्रश्न) 5 X 4 = 20

खण्ड–2

काव्यांग परिचय **20 अंक**

(क) रस प्रकरण (1 प्रश्न) 1 X 4 = 4

(ख) छंद (दोहा, सोरठा, चौपाई, रोला, मन्दाक्रांता, शिखरिणी, वसंततालिका, मालिनी) कोई दो प्रश्न 2 X 4 = 8

(ग) अलंकार (अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, उपमा, रूपक, उम्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, संदेह, भ्रांतिमान) कोई दो प्रश्न 2 X 4 = 8

खण्ड–3

अपरा – (आधार पुस्तक) **40 अंक**

(क) 1 व्याख्या गद्य भाग से (विकल्प सहित) 1 X 5 = 5

(ख) 1 व्याख्या पद्य भाग से (विकल्प सहित) 1 X 5 = 5

(ग) 2 निबन्धात्मक प्रश्न

(1 प्रश्न गद्य से एवं 1 प्रश्न पद्य भाग से विकल्प सहित) 2 X 5 = 10

(घ) 4 लघूत्तरात्मक प्रश्न (2 गद्य एवं 2 पद्य भाग से) 4 X 3 = 12

(ड) किसी एक कवि या लेखक का परिचय 1 x 4 = 4

(च) 2 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (1 गद्य एवं 1 पद्य भाग से) 2 x 2 = 4

खण्ड–4

आलोक – (पूरक पुस्तक) 20 अंक

(क) 1 निबन्धात्मक प्रश्न (विकल्प सहित) 1 x 5 = 5

(ख) 5 लघूत्तरात्मक प्रश्न 5 x 3 = 15

निर्धारित पुस्तकें –

1. **अपरा** – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।
2. **आलोक** – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर।

अनुक्रमणिका

पद्य भाग

पाठ	लेखक	पृष्ठ संख्या
1. पद्मावती समय	चंदवरदायी	1–6
2. विनय, बाल लीला, भ्रमरगीत	सूरदास	7–12
3. पदावली	मीरा बाई	13–15
4. शिवाजी का शौर्य एवं छत्रसाल की वीरता	भूषण	16–20
5. दोहे	बिहारी	21–25
6. भारत–भारती से संकलित पद	मैथिलीशरण गुप्त	26–30
7. नीति, वैराग्य एवं चेतावनी	बावजी चतुर सिंह जी	31–34
8. प्रार्थना, संध्या, द्रुत झरो	सुमित्रानंदन पंत	35–39
9. देश उठेगा, गौरवशाली परंपरा	नंदलाल जोशी	40–43

गद्य भाग

10. काल-चक्र	विद्यानिवास मिश्र	44–49
11. पुरस्कार	जयशंकर प्रसाद	50–60
12. निक्की, रोजी और रानी	महादेवी वर्मा	61–70
13. नशा	प्रेमचंद	71–78
14. भारतीय नारी	स्वामी विवेकानंद	79–85
15. गद्य साहित्य का आविर्भाव	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	86–93
16. बेचारा 'कामनमेन'	हरिशंकर परसाई	94–101
17. भारतीय जीवन–दर्शन एवं संस्कृति	इंदुमति काटदरे	102–107
18. यात्रा का रोमांस	मोहन राकेश	108–114
19. अनोखी परीक्षा	विजयदान देथा	115–119
20. धरा और पर्यावरण	कुप.सी.सुदर्शन	120–124

...

रस प्रकरण	125–136
छंद	137–142
अलंकार	143–148

1. चंदवरदायी

कवि–परिचय

हिंदी साहित्य के आदिकाल में जो वीरगाथा काव्य लिखा गया, उसमें सबसे अधिक प्रसिद्धि 'पृथ्वीराज रासो' को प्राप्त हुई। इसके रचयिता चंदवरदायी का जन्म सन् 1168 ई० में लाहौर में हुआ था। ये दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के सखा और सभाकवि थे। कहते हैं कि चंदवरदायी और पृथ्वीराज के जन्म तथा मृत्यु की तिथि भी एक ही थी। प्रसिद्धि है कि जब मुहम्मद गोरी सम्राट पृथ्वीराज को बंदी बनाकर गजनी ले गया, तो वहाँ पहुँच कर चंद ने उनकी अद्भुत बाण विद्या की प्रशंसा की। संकेत पाकर पृथ्वीराज ने शब्दबेधी बाण से गोरी को मार गिराया और अपनी स्वातंत्र्य की रक्षा करने के लिए एक–दूसरे को कटार मारकर दोनों ने मृत्यु का वरण किया।

चंदवरदायी कलम के ही धनी नहीं थे, रणभूमि में पृथ्वीराज के साथ ही अन्य सामंतों की तरह तलवार भी चलाते थे। वे स्वयं वीररस की साकार प्रतिमा थे। उनका 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का आदिकाव्य है। इसमें सम्राट पृथ्वीराज के पराक्रम और वीरता का सजीव वर्णन है। इसमें 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं। कहा जाता है कि चंद इसे अधूरा ही छोड़कर गजनी चले गए थे जिसे उनके पुत्र जल्हण ने बाद में पूरा किया।

काव्य–परिचय

'पृथ्वीराज रासो' जिस रूप में मिलता वह प्रामाणिक नहीं है क्योंकि उसमें वर्णित पात्र, स्थान, नाम, तिथि और घटनाओं में से अधिकतर की प्रामाणिकता संदिग्ध है परंतु इतना अवश्य है कि मूल रूप में यह ग्रंथ इतना विशाल नहीं था। इसमें पृथ्वीराज के अनेक युद्धों, आखेटों और विवाहों का वर्णन है। कवि ने अपने चरितनायक को सभी श्रेष्ठ गुणों से युक्त चित्रित किया है। पृथ्वीराज के व्यक्तित्व में अद्भुत सौंदर्य, शक्ति और शील का सन्निवेश है।

'पृथ्वीराज रासो' वीर रस प्रधान काव्य है। इसमें ओज गुण की दीप्ति आदि से अंत तक विद्यमान है। रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों का वर्णन युद्ध के प्रसंग में और श्रृंगार का वर्णन विविध विवाहों के प्रसंग में मिलता है। शशिव्रता, इंछिनी, संयोगिता, पद्मावती आदि के रूप–सौंदर्य का मोहक वर्णन चंद ने किया है।

चंद की भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी आदि की शब्दावली का सशक्त प्रयोग हुआ है। परंपरा से चले आते हुए संस्कृत तथा प्राकृत छंदों का प्रयोग रासो में हुआ ही है, युद्ध वर्णन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त छप्पय छंद की छटा देखते ही बनती है।

श्रेष्ठ जीवन–पद्धति, पराक्रम एवं वीरता का जो आदर्श भारतीय जनता ने अपने चित्त में प्रतिष्ठित कर रखा है, पृथ्वीराज उसके प्रतिनिधि रूप में चित्रित हुए हैं। इसलिए पराजित होने पर भी वे जन–मानस के अजेय योद्धा के रूप में विराजमान हैं। चंद ने उनके रूप में भारतीय वीर–भावना का चरमोत्कर्ष दिखाया है, अतएव अप्रामाणिक माना जाने वाला 'पृथ्वीराज रासो'

हमारा उत्कृष्ट महाकाव्य है। इससे प्रेरणा लेकर डिंगल में अनेक रासो काव्यों की रचना की गई है।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत संकलन में 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' में से कतिपय छंद उद्धृत किए गए हैं। समुद्रशिखर दुर्ग के गढ़पति की राजकुमारी पद्मावती अद्वितीय सुंदरी है। एक तोता उससे पृथ्वीराज के सौन्दर्य और पराक्रम का वर्णन करता है जिसे सुनकर वह पृथ्वीराज के प्रति अनुराग रखने लगती है। जब राजा उसका विवाह कुमाऊँ के राजा कुमोदमणि के साथ करना चाहते हैं, तो वह तोते को संदेशवाहक बनाकर पृथ्वीराज के पास भेजती है। वे शुक की बात सुनकर पद्मावती का वरण करने के लिए चल देते हैं। उधर पद्मावती शिव मंदिर में पूजा करने आती है। वहीं से पृथ्वीराज रुक्मिणी की भाँति उसका हरण करके घोड़े पर बिठाकर दिल्ली की ओर चल देते हैं। राजा की सेना युद्ध करके हार जाती है। इसी बीच अवसर पाकर शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज पर आक्रमण करता है। घोर युद्ध होता है। अंत में गोरी को परास्त करके पकड़ लिया जाता है। दिल्ली आकर शुभ लग्न में पद्मावती के साथ पृथ्वीराज विवाह कर लेते हैं।

•••

पद्मावती समय

पूरब दिस गढ़ गढ़नपति। समुद सिषर अति दुग्ग।
तहँ सु विजय सुर राज पति। जादू कुलह अभंग।।1।।
धुनि निसान बहु साद। नाद सुरपंच बजत दीन।
दस हजार हय चढ़त। हेम नग जटित साज तिन।।
गज असंष गजपतिय। मुहर सेना तिय संषह।।
इक नायक कर धरी। पिनाक धरभर रज रष्षह।।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम। रथ सुरङ्ग अम्मर डमर।।
भंडार लछिय अगनित पदम। सो पदम सेन कूँवर सुधर।।2।।
मनहुँ कला ससिभान। कला सोलह सो बन्निय।।
बाल बैस ससिता समीप। अंम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल म्रिग भमर। वैन षंजन मृग लुट्टिय।।
हीर कीर अरू बिंब। मोति नष सिष अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयंद हरि हंस गति। विह बनाय संचै सचिय।।
पदमिनिय रूप पदमावतिय। मनहु काम कामिनि रचिय।।3।।
सामुद्रिक लच्छन सकल। चौसठि कला सुजान।।
जानि चतुर दस अंग षट। रति बसंत परमान।।4।।
सषियन सँग खेलत फिरत। महलनि बाग निवास।।
कीर इक्क दिष्षिय नयन। तब मन भयौ हुलास।।5।।
मन अति भयो हुलास। विगसि जनु कोक किरण रवि।।

अरुण अधर तिय सुधर। बिंब फल जानि कीर छबि।।
यह चाहत चष चकित। उहजु तक्किय झरप्पि झर।।
चंच चहुट्टिय लोभ। लियौ तब गहित अप्प कर।।
हरषत अनंद मन महि हुलस। लै जु महल भीतर गइय।।
पंजर अनूप नग मनि जटित। सो तिहि मँह रष्षत भइय।।6।।
सवालष्ष उत्तर सयल। कमऊँ गड्ढ दूरंग।।
राजत राज कुमोदमनि। हय गय द्रिब्ब अभंग।।7।।
नारिकेल फल परठि दुज। चौक पूरि मनि मुत्ति।।
दई जु कन्यसा बचन बर। अति अनंद करि जुत्ति।।8।।
पदमावति विलषि बर बाल बेली। कही कीर सों बात तब हो अकेली।।
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेस। बरं चाहुवानं जु आनौ नरेसं।।9।।
आँनो तुम्ह चाहुवांन बर। अरु कहि इहै संदेस।।
सांस सरीरहि जो रहै। प्रिय प्रथिराज नरेस।।10।।
लै पत्री सुक यों चल्यौ। उड्यौ गगनि गहि बाव।।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर। अट्ठ जाम में जाव।।11।।
दिय कग्गर नृप राज कर। षुलि बंचिय प्रथिराज।।
सुक देखत मन में हँसे। कियौ चलन कौ साज।।12।।
कर पकरि पीठ हय परि चढ़ाय। लै चल्यौ नृपति दिल्ली सुराय।।
भइ षबरि नगर बाहिर सुनाय। पदमावतीय हरि लीय जाय।।13।।
कम्मान बांन छुट्टहि अपार। लागंत लोह इम सारि धार।।
घमसान घाँन सब बीर षेत। घन श्रोन बहत अरु रकत रेत।।14।।
पदमावति इम लै चल्यौ। हरषि राज प्रिथिराज।।
एतें परि पतिसाह की। भई जु आनि अवाज।।15।।
भई जु आँनि अवाज। आय साहाबदीन सुर।।
आज गहौं प्रथिराज। बोल बुल्लंत गजत धुर।।
क्रोध जोध जोधा अनंद। करिय पती अनि गज्जिय।।
बांन नालि हथनालि। तुपक तीरह स्रव सज्जिय।।
पव्वै पहार मनों सार के। भिरि भुजांन गजनेस बल।।
आये हकरि हकार करि। षुरासान सुलतान दल।।16।।
तिन घेरिय राज प्रथिराज राजं। चिहौ ओर घन घोर निसाँन बाजं।।
गही तेग चहुंवान हिंदवांन रानं। गजं जूथ परि कोप केहरि समानं।।17।।
गिरद्दं उडी भाँन अंधार रैनं। गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं।।
सिरं नाय कम्मान प्रथिराज राजं। पकरियै साहि जिम कुलिंगबाजं।।18।।
जीति भई प्रथिराज की। पकरि साह लै संग।।
दिल्ली दिँसी मारगि लगौ। उतरि घाट गिर गंग।।19।।

बोलि विप्र सोधे लगन्न। सुभ घरी परट्ठिय।।
हर बांसह मंडप बनाय। करि भांवरि गंठिय।।
ब्रह्म वेद उच्चरहिं। होम चौरी जुप्रति वर।।
पद्मावती दुलहिन अनूप। दुल्लह प्रथिराज राज नर।।
डंडयौ साह साहाबदी। अट्ठ सहस हे वर सुघर।।
दै दाँन माँन षट भेष कौ। चढ़े राज द्रूग्गा हुजर।।20।।

•••

शब्दार्थ

1. पूरब दिसि–पूर्व दिशा में/गढ़न पति –गढ़ों का स्वामी, श्रेष्ठ दुर्ग या गढ़/समुद सिषर–समुद्र शिखर (दुर्ग का नाम), अति–अत्यंत विशाल/ दुग्ग–दुर्ग/तहँ–वहाँ/ सु–श्रेष्ठ/ सुरराज पति–इन्द्र/जादू कूलह–यादव वंश का, यदुकुल का/ अभग्ग–अभग्न, अभेद्य, अजेय।
2. नद–शब्द, गूँज/ सुरपंच–पंचम स्वर (मृदंग, तंत्री, मुरली, ताल, बेला या झाँझ और दुंदुभि आदि वाद्यों के स्वर)/ हय चंढत–घुड़सवार/ हेम–स्वर्ण/ नग–रत्न/ जटित–जड़े हुए/साज–घोड़ों की सज्जा, जीन और चँवर/ तिन–उसके/ असंष–असंख्य/ गजपतिय–गजराज/ मुहर–अग्रभाग, हरावल/ तिन–उसकी/ कर धरी पिनाक – हाथ में धनुष धारण करके/ पुत्र–पुत्रिय समय–समान गुणों से युक्त पुत्र, पुत्री/ सुरंग–सुंदर/उम्मर–आकाश/उमर–चंदोवा/भण्डार–कोष/लछिय–लक्ष्मी/अगणित–असंख्य/ पदम–संख्या विशेष (दस नील से आगे)/ सुधर–सुंदर
3. कला सोलह–चंद्रमा की सोलह कलाओं से/ सो–वह, बन्निय–बनी थी/ बाल बैस–बाल/वयस–बचपन/ ससिता–शिशुता–शैशवावस्था/ ससि–चंद्रमा/ ता–उसके/ अंम्रित–अमृत/ पिन्निय–पीया है, पान किया है/ विंगसि कमल म्रिग – मुख विकसित कमल की श्रेणी को भी लज्जित करता है / बेनु–वंशी/ मृग–हरिण/ लुट्टिय–लूट लिया है, श्रीहीन कर दिया है, छप्पति – छिपाती है/ हरि–सिंह/ बिह बनाय – विधि ने बनाकर/ संचै सचिय – साँचे में ढालकर/ मनहूँ – मानों/ काम–कामिनी – काम देव की पत्नी, रति/ रचिय – रचना की है।
4. सामुद्रिक – हस्त एवं पद तथा मुखाकृति से शुभाशुभ बताने की विद्या/ लच्छिन–लक्षण/ सकल–समस्त/ चौसठ कला– चौसठ कलाएँ/ चतुर्दश–चौदह विद्याएँ/ षट–छह शास्त्र वेद के अंग/ रति बसन्त परमान– रति और वसंत के अनुरूप।
5. सषिन संग– सखियों के साथ में/ बग्ग–बाग में, उद्यान में/ कीर–तोता/ इक्क–एक/ दिषिय–देखा/ हुलास–प्रसन्न।
6. हुलास–उल्लास, हर्ष/ चष–चक्षु, नेत्र/ चंच चहुहिक–चोंच (चतायी) से पकड़ा/ अप्प–अपने/ रष्षत भई–रख दिया।
7. सवा लष–सपादलक्ष/ सयल–शैल, पर्वत/ दूरंग–दुर्गम/ द्रिव्य–द्रव्य, धन।

8. नारिकेल–नारियल।
9. झटं–शीघ्र।
10. प्रथिराज–पृथ्वीराज।
11. पत्री–पत्र/ गगनि–गगन, आकाश में/गाईबाब–वायु का आधार लेकर।
12. कग्गर–कागज, पत्र/ षुलि–वांचिय – खोलकर बाँचा, पढ़ा।
13. षबरि–खबर/ हरिलीय जाय–अपहरण किया जा रहा है।
14. कम्मान–कमान, धनुष/ श्रोन–खून।
15. पतिसाह–बादशाह, शहाबुद्दीन गोरी/ अवाज–आवाज।
16. करियपती–पंक्तिबद्ध किया/ गज्जिय–गर्जना की/ श्रब–सब/ सज्जिय–सजाए।
17. चिहौ ओर–चारों ओर/ हिंदवान रानं–हिंदुओं के राजा/ गजं जूथ–हाथियों के झुंड पर/ केहरि–केशरी, सिंह।
18. गिरद्द–गर्द, धूल/ भान–भानु, सूर्य/ रैनं–रात/ मज्झि–बीच में/ कुलिंग–पक्षी।
19. लगन्न–लगन/ परट्ठिय–पक्षी या तै की गई/ भांवरि गंठिय–भांवरे पड़ी/ दुल्लह–दूल्हा, वर/ द्रूग्गा–दुर्ग।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. चंदवरदायी की रचना का नाम है –
   (क) पद्मावत (ख) पृथ्वीराज रासो
   (ग) खुमान रासो (घ) रामायण ( )
2. पृथ्वीराज का युद्ध किसके साथ हुआ ?
   (क) कुमोदमणि (ख) अकबर
   (ग) महमूद गजनवी (घ) शहाबुद्दीन गोरी ( )

उत्तरमाला – (1) ख (2) घ

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. क्या 'पृथ्वीराज रासो' प्रामाणिक रचना है ?
2. चंदवरदायी किसके सभाकवि थे ?
3. तोता पृथ्वीराज से किस नगर में मिला ?
4. पृथ्वीराज रासो का प्रधान रस कौनसा है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पद्मावती ने तोते से क्या पूछा ?
2. 'पदमसेन कूँवर सुधर' किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ?
3. शुक को लेकर पद्मावती कहाँ गई और उसे कहाँ रखा ?
4. पृथ्वीराज ने गोरी को किस प्रकार प्रकड़ लिया ?
5. पृथ्वीराज ने शत्रुओं का सामना किस तरह से किया ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'पद्मावती समय' के आधार पर इस काव्य के महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का आदि महाकाव्य है। इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

3. पद्मावती के रूप–सौंदर्य की विशेषताएँ लिखिए।

4. निम्नांकित अवतरणों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) तिन घेरिय राज प्रथिराज राजं। चिहौ ओर घन घोर निसाँन बाज।।
गही तेग चहुंवान हिंदवांन रानं। गजं जूथ परि कोप केहरि समानं।।

(ख) गिरद्दं उडी भाँन अंधार रैनं। गई सूधि सज्झै नहीं मज्झि नैनं।।
सिरं नाय कम्मांन प्रथिराज राजं। पकरियै साहि जिम कुलिंगबाजं।।

•••

यह भी जानें –

भारत संघ तथा कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप हिंदी का मानक रूप निर्धारित करना बहुत आवश्यक था, ताकि वर्णमाला में सर्वत्र एकरूपता रहे और टाइपराइटर, कंप्यूटर आदि आधुनिक यंत्रों के उपयोग में लिपि की अनेकरूपता बाधक न हो। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने देश के शीर्षस्थ विद्वानों के साथ वर्षों के विचार–विमर्श के पश्चात् हिंदी वर्णमाला तथा अंकों का जो मानक स्वरूप निर्धारित किया, वह इस प्रकार है –

हिंदी वर्णमाला

वर्णमाला का क्रम इस प्रकार होगा –

स्वर – अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

टिप्पणी – संस्कृत के लिए प्रयुक्त देवनागरी वर्णमाला में ॠ, ऌ तथा ळ भी सम्मिलित हैं, किंतु हिंदी में इनका प्रयोग न होने के कारण इन्हें हिंदी की मानक वर्णमाला में स्थान नहीं दिया गया है।

मूल व्यंजन

क ख ग घ ङ / च छ ज झ ञ/ ट ठ ड ढ ण/ त थ द ध न/ प फ ब भ म/ य र ल व/ श ष स ह/ ड़/ ढ़

इस तरह हिंदी वर्णमाला में मूलतः 11 स्वर तथा 35 व्यंजन हैं।

संयुक्त व्यंजन

क्ष (क् + ष), त्र (त् + र), ज्ञ (ज् + ञ), श्र (श् + र)

2. सूरदास

कवि परिचय

सूरदास हिंदी काव्य–जगत् के सूर्य माने जाते हैं। कृष्ण–भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित करने में उनका विशेष योगदान है। उनके जीवन–वृत्त के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। अधिकतर विद्वान सूरदास का जन्म सन् 1483 ई. (संवत् 1540 वि०) और निधन संवत् 1620 वि० मानते हैं। उनका जन्म दिल्ली के निकट सीही नामक ग्राम के एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे जन्मांध थे। उनका कंठ बड़ा मधुर था। वे पद–रचना करके गाया करते थे। बाद में वे आगरा और मथुरा के बीच स्थित गऊघाट पर जाकर रहने लगे। वहीं श्री वल्लभाचार्य जी के संपर्क में आए और पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए। उन्हीं की प्रेरणा से सूरदास ने दास्य एवं दैन्य भाव के पदों की रचना छोड़कर वात्सल्य, माधुर्य भाव और सख्य भाव के पदों की रचना करना आरंभ किया। पुष्टिमार्ग के अष्टछाप भक्त कवियों में सूरदास अग्रगण्य थे। पुष्टिमार्ग में भगवान की कृपा या अनुग्रह का अधिक महत्त्व है। इसे काव्य का विषय बनाकर सूरदास अमर हो गए। जब सूरदास का अंतिम समय निकट था तब श्री विट्ठलनाथ जी ने कहा था – ''पुष्टि–मार्ग को जहाज जात है, जाय कछू लैनों होय सो लेउ।''

काव्य परिचय

सूरदास जी की रचनाओं में सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी को ही विद्वानों ने प्रामाणिक रूप से मान्यता दी है। परन्तु 'सूरसागर' की जितनी ख्याति हुई है उतनी शेष दो कृतियों को प्राप्त नहीं हुई।

भाव पक्ष

सूरदास कृष्ण भक्ति की सगुण शाखा के कवि थे। उनकी भक्ति को दो भागों में विभाजित करके देखना अधिक उपयुक्त होगा – एक, श्री वल्लभाचार्य जी से साक्षात्कार के पूर्व की भक्ति जिसमें दैन्य भावना और सूर की गिड़गिड़ाहट अधिक है। दूसरी, श्री वल्लभाचार्य जी से संपर्क के बाद की भक्ति अर्थात् पुष्टिमार्गीय भक्ति, जिसमें सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की भक्ति है। उन्होंने विनय, वात्सल्य और शृंगार तीनों प्रकार के पदों की रचना की थी। उन्होंने संयोग और वियोग दोनों प्रकार के पद रचे। 'सूरसागर' का भ्रमर–गीत प्रसंग वियोग शृंगार का श्रेष्ठ उदाहरण है। सूर का वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य की एक अमूल्य निधि है। ये वात्सल्य का कोना–कोना झाँक आए हैं।

कला पक्ष

सूरदास की काव्यभाषा ब्रजभाषा है। लोकोक्ति और मुहावरों का भी सहज रूप में प्रयोग किया है। उनके पदों में लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों का समुचित प्रयोग मिलता है। 'सूरसारावली' में दृष्टिकूट पद हैं, जो दुरूह माने जाते हैं। विरह वर्णन में व्यंजना शब्द–शक्ति का प्रयोग अधिक है। सूर के सभी पद गेय हैं। उनकी शैली में भी विविधता है। उन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

पाठ–परिचय

प्रस्तुत संकलन में सूरदास के विनय, बाल–वर्णन और भ्रमरगीत के पद संकलित हैं। विनय के पदों में कवि ने अपनी दीनता व्यक्त की है। उन्होंने अपनी तुच्छता का विस्तृत वर्णन करते हुए दीनानाथ, अशरण–शरण, सर्वशक्तिमान भगवान की असीम कृपा का गुणगान किया है और उनसे भक्ति की याचना की है। उनकी भक्ति का मूलाधार पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जिसमें सख्य भाव की बहुलता है।

सूर बाल–मनोविज्ञान के पंडित थे। बाल–क्रियाओं का जितना विशद् वर्णन सूर–काव्य में मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। वात्सल्य–वर्णन का कोई क्षेत्र उनसे नहीं बचा है। वात्सल्य का मुख्य केंद्र यशोदा का हृदय है। उनकी चेष्टाएँ माता के हृदय में आशा–आकांक्षाओं का संचार करती हैं।

भ्रमरगीत विप्रलंभ शृंगार का काव्य है। इसमें विरह की सभी दशाओं का चित्रण है। यह एक उपालंभ काव्य है। विरह–व्यथित गोपियों के तर्क के कारण उद्धव ब्रह्म और योग–साधना को भूल जाते हैं और सगुण भक्ति को स्वीकार कर लेते हैं।

•••

विनय

(1)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी फिरि जहाज पर आवै।।
कमल–नैन कौ छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग कौ छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै।।
जिहि मधुकर अंबुज–रस चाख्यौ, क्यौं करील फल भावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

(2)

अविगत–गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन–बाणी कौं अगम–अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप–रेख–गुण जाति–जुगुति–बिनु, निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातैं, सूर सगुन–लीला पद गावै।।

(3)

छाँड़ि मन हरि विमुखन कौ संग।
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग।।
कहा भयौ पय, पान कराये विष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाए गंग।।

खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै गहि छंग।।
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतौ करत निषंग।
सूरदास खल कारीकामरि चढ़ै न दूजो रंग।।

(4)

अब कै राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया, पारधि साधेबान।।
ताकै डर तैं भज्यौ चहत हौं, ऊपर ढुक्यो सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, सर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय–जय कृपानिधान।।

बाल–लीला

मैया, मैं तो चंद–खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अवही, तेरी गोद न ऐहौं।।
सुरभी को पय–पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वै हौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहै हौं।।
आगे आउ, बात सुन मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं।
हँसि समुझावति, कहती जसोमति, नई दुलहनिया दैहौं।।
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अवहिं वियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं।।

(2)

जब हरि मुरली अधर धरी।
गृह–व्यौहार तजे आरज–पथ, चलत न संककरी।।
पद–रिपु पट अंटक्यौ न सम्हारति, उलट न पलट खरी।
सिब–सुत–वाहन आइ मिलें हैं, मन–चित–बुद्धि हरी।।
दुरि गए कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधिबिसरी।
उडुपति विद्रुम बिम्ब खिसाने, दामिनि अधिक डरी।।
मिलि हैं स्यामहिं हंस–सुता–तट, आनँद–उमँग भरी।
सूर स्याम कौं मिली परस्पर, प्रेम–प्रवाह ढरी।।

(3)

गए स्याम ग्वालिनि घर सूनै।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूनै।।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि कर्‌यौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं हँसत चले दै कूक।।

आइ गई ग्वालिनि तिहि औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।।
दोउ भुज धरि गाढ़ै करि लीन्हे, गई महरि के आगै।
सूरदास अब बसै कौनह्याँ, पति रहि है ब्रज त्यागै।।

भ्रमरगीत

(1)

आयौ घोष बड़ौ व्यौपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आय उतारी।।
फाटक दै कर हाटक माँगत भौरे निपट सुधारी।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी।।
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी।
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।।
ऊधो जाहु सवार यहाँ तें वेगि गहरु जनि लावौ।
मुँह माँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।

(2)

ऊधो! कोकिल कूजत कानन।
तुम हमको उपदेस करत हौ भस्म लगावन आनन।।
औरों सब तजि, सिंगी लै–लै टेरन चढ़न पखानन।
पै नित आनि पपीहा के मिस मदन हति निज बानन।।
हम तौ निपट अहीरि बाबरी जोग दीजिए ज्ञाननि।
कहा कथत मामी के आगे जानत नानी नानन।।
सुंदरस्याम मनोहर मूरति भावति नीके गानन।
सूर मुकुति कैसे पूजति है वा मुरली की तानन।।

(3)

ऊधो! जाहु तुम्हैं हम जाने।
स्याम तुम्हैं ह्याँ नाहिं पठाए तुम हौ बीच भुलाने।।
ब्रजवासिन सों जोग कहत हौ, बातहु कहन न जाने।
बढ़ लागै न विवेक तुम्हारो ऐसे नए अयाने।।
हमसों कही लई सो सहिकै जिय गुनि लेहु अपाने।
कहँ अबला कहँ दसा दिगंबर संमुख करौ पहिचाने।।
साँच कहौ तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने।
सूर स्याम जब तुम्हैं पठाए तब नेकहु मुसुकाने।।

(4)

ऊधो! भली करी अब आए।
विधि–कुलाल कीने काँचे घट ते तुम आनि पकाए।।
रंग दियो हो कान्ह साँवरे, अँग अँग चित्र बनाए।
गलन न पाए नयन–नीर ते अवधि अटा जो छाए।।
ब्रज करि अँवाँ, जोग करि ईंधन सुरति–अगिनी सुलगाए।
फूँक उसास, विरह परजारनि, दरसन आस फिराए।।
भए सँपूरन भरे प्रेम–जल, छुवन न काहू पाए।
राजकाज तें गए सूर सुनि, नंदनन्दन कर लाए।।

(5)

ऊधो! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की सुन्दरि कगरी अरू कुंजन की छाहीं।।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं।।
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि–मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं।।
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं।।

शब्दार्थ

अनत–अन्यत्र / खनावै–खुदाए / छेरी–बकरी / अविगत–निराकार ब्रह्म / परम स्वाद–अलौकिक आनंद / निरालंब–बिना आधार का / अरगजा–कपूर, केसर और चंदन से बना सुगंधित पदार्थ / मरकट–बंदर / पारधि–बहेलिया / ढुक्यौ–झपटा / सचान–बाज / गुहै हौं–गुथवाऊँगा / आरजपथ–आर्य मार्ग / शिव–सुत–वाहन–मयूर / चूनै– चूर–चूर / पति–प्रतिष्ठा / घोष–अहीरों की बस्ती / फाटक–फटकन / हाटक–सोना / डहकावे – बहके / निदाने–सच, वास्तविक / कुलाल–कुम्हार / हंससुता–यमुना / खरिक–गाय दुहने का स्थान।

वस्तुनिष्ठ–प्रश्न

1. ''जब हरि मुरली अधर धरी'' पद में वर्णन किया है –
   (क) मुरली की मधुरता का। (ख) कृष्ण के मुरली वादन का।
   (ग) गोपियों की मुग्धता का। (घ) मुरली–ध्वनि के अलौकिक प्रभाव का।( )
2. ''आयौ घोष बड़ौ व्यौपारी'' कथन में छिपा है –
   (क) व्यंग्य (ख) उपालंभ
   (ग) उपेक्षा (घ) घृणा ( )

उत्तरमाला – (1) ग (2) क

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै'' पंक्ति के मूल भाव को स्पष्ट करने के लिए कौन–सा उदाहरण दिया है ?
2. सूरदास ने हरि–भक्ति से विमुख लोगों का साथ छोड़ने का आग्रह क्यों किया है ?
3. ''ताकै डरतैं भज्यौ चाहत हौं, ऊपर ढुक्यो सचान'' पंक्ति में सचान किसका प्रतीक है ?
4. गोपियाँ उद्धव को मुँह माँगी वस्तु देने को कब तैयार थी ?
5. ग्वालिन के सूने घर में जाकर कृष्ण ने क्या किया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गोपी–उद्धव संवाद को भ्रमरगीत के नाम से क्यों पुकारा जाता है ?
2. ''ऊधो! भली करी अब आए'' गोपियों ने उद्धव के आगमन को उचित बताते हुए क्या व्यंग्य किया है?
3. ''मैया, मैं तो चंद–खिलौना लैहौं।'' पद में बाल स्वभाव की कौनसी विशेषता बताई गई है और माता ने उसका समाधान किस प्रकार किया ?
4. ''ऊधो! कोकिल कूजत कानन'' पद में गोपियों ने योग साधना का खंडन किस प्रकार किया है ?
5. ''सूर स्याम जब तुम्हैं पठाए तब नेकहु मुसकाने'' पद में गोपियों ने उद्धव से यह प्रश्न क्यों किया ? कारण स्पष्ट कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'सूर ने बाल लीला का मनोहारी वर्णन किया है।' उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
2. सूरदास जी ने निर्गुण का खंडन और सगुण का समर्थन किया है। उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
3. गोपियाँ कृष्ण की अनन्य प्रेमिका थीं। भ्रमरगीत के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) ऊधो! कोकिल .....दिखावौ।

(ख) जब हरि .....प्रेम प्रवाह ढरी।

(ग) अब कै राखि.....कृपानिधान।

(घ) ऊधो! मोहि.....पछिताहीं।

यह भी जानें

हिंदी अंक – १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप – 1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

टिप्पणी – संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप होगा, परंतु राष्ट्रपति, संघ के किसी भी राजकीय प्रयोजन के लिए भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकते हैं।

•••

3. मीरा बाई

कवि परिचय

हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में मीरा बाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके जन्मकाल तथा जीवन–वृत्त के विषय में बहुत मतभेद है परन्तु मुख्यतः माना जाता है कि मीरा मेड़ता के राव रत्नसिंह की पुत्री थीं। इनका जन्म 1498 ई० में कुड़की गाँव में हुआ था। राणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ इनका विवाह 1516 ई० में हुआ। कुछ वर्षों में ही कुँवर भोजराज मुगलों के साथ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए और मीरा विधवा हो गई। बचपन से ही मीरा कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम रखती थीं। वे उन्हें ही अपना प्रिय और पति मानती थीं। लौकिक प्रेम में उनकी रुचि और निष्ठा नहीं थी। भगवान कृष्ण के प्रेम में दीवानी बनी मीरा ने .लोक लाज छोड़कर भक्ति का मार्ग अपनाया। साधु–संतों के साथ भक्ति भावना में लीन रहने और उनके साथ उठने–बैठने के कारण चित्तौड़ के राजपरिवार ने उनका विरोध किया। अंततः मीरा राजपरिवार को छोड़कर द्वारका चली गईं। वहीं कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गईं, ऐसी प्रसिद्धि है।

काव्य परिचय

मीरा ने विशेषतः पदों की रचना की थी। उनके पदों की अनेक टीकाएँ और संकलन बने हैं। उनके चार काव्य ग्रंथ हैं – 1. नरसी जी का मायरा, 2. गीत गोविंद की टीका, 3. राग गोविंद, 4. राग सोरठ।

मीरा के पद राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में हैं। कोई चमत्कार दिखाने के लिए उन्होंने काव्य नहीं रचा। भगवान के प्रति अनन्य अनुराग उनके पदों में सहज रूप से व्यक्त हुआ है।

मीरा का काव्य माधुर्य भाव का जीवंत रूप है। वे कृष्ण को ही अपना पति मानकर उपासना करती थीं। उनके लिए संसार में कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा पुरुष अस्तित्व में ही नहीं था। कृष्ण के विरह में वे व्याकुल रहती थीं। यही व्याकुलता उनके पदों में व्यक्त हुई। शृंगार के विप्रलंभ पक्ष का चित्रण बहुत मार्मिक है। उनकी स्वानुभूति ने अभिव्यक्ति को अत्यधिक अनुपम बना दिया।

मीरा के पदों में प्रसाद और माधुर्य गुणों की प्रचुरता है। पदों में श्रुतिमधुर वर्णयोजना, सीधी–सादी उक्तियाँ और सच्चा आत्म निवेदन उनके काव्य की ऐसी विशेषताएँ हैं जो मीरा को प्रथम कोटि के भक्त कवियों में निस्संदेह स्थान प्रदान करती है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में उद्धृत मीरा बाई के पदों में उनकी कृष्ण–भक्ति व्यक्त होती है। वे अपने को कृष्ण की दासी, प्रियतमा, भक्त एवं उपासिका के रूप में मानती हैं। संसार को नश्वर मानकर कृष्ण को परमात्मा के रूप में भजने से ही जीव का कल्याण हो सकता है। जब तक प्रिय से भेंट नहीं होती, जीव व्यथित रहता है, चैन नहीं पड़ती। सद्गुरु की कृपा से भवसागर पार किया जा सकता है। वे कृष्ण को निर्गुण, सगुण, प्रिय, जोगी आदि अनेक संबोधनों से पुकारती हैं। यहाँ कृष्ण–प्रेम की अनन्यता प्रकट हुई है।

पदावली

भज मन! चरण–कँवल अविनासी।
जेताई दीसै धरणि–गगन विच, तेता (इ) सब उठ जासी।।
इस देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड्यां उठ जासी।।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होइ जुगति नहिं जांणि, उलटि जनम फिर आसी।।
अरज करूं अबला कर जोरे, स्याम! तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर! काटो जम की फाँसी।।

(2)

दरस बिनु दूखण लागे नैन।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन।।
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै मीठे–मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत अैन।।
कल न परत पल हरि मग जोंवत भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलौगे दुख मेटण सुख दैण।।

(3)

मैंने राम रतन धन पायो।
बसत अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायो।
जनम–जनम की पूँजी पायी, जग में सबै खोवायो।
खरचै नहिं चोर न लेवैं, दिन–दिन बधत सवायो।।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरखि–हरखि जस गायो।।

(4)

माई री! मैं तो लियो गोविन्दो मोल।
कोई कहै छानै, कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता ढोल।।
कोई कहै मुँहघो, कोई कहै सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री आँखी खोल।।
याही कूँ सब जग जाणत है, लियो री अमोलक मोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम को कोल।।

शब्दार्थ

कँवल–कमल / अविनासी–नष्ट न होने वाला / करवत–आरा / जासी–जाएगा / चहरकी बाजी–चौसर खेल की बाजी / जम की फाँसी–यम का फंदा, काल–पाश / विण–बिना / नैण–नयन, नेत्र / छानै–छिपे तौर पर / मुँहघो–महँगा / सुँहघो–सस्ता /

पूरब जनम को कोल–मीरा का कृष्ण के प्रति पूर्वजन्म के प्रेम का भाव प्रकट होता है। ऐसी मान्यता है कि पूर्व जन्म में मीरा ललिता नाम की गोपी थी, जो कृष्ण से प्रेम करती थी। मीरा ने उसी भाव को प्रकट किया है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'लियो री बजंता ढोल' पंक्ति में 'बजंता ढोल' से मीरा का आशय है –
   (क) प्रसन्न होकर (ख) निशंक होकर
   (स) सबको दिखाकर (द) छिपकर ( )
2. मीरा के पदों में किस भाव की प्रधानता है ?
   (क) वीर (ख) वात्सल्य
   (ग) ओज (द) माधुर्य ( )

   उत्तरमाला – (1) ख (2) घ

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मीरा संसार को किस खेल के समान मानती है ?
2. सद्गुरु ने मीरा को कौन सी अमूल्य वस्तु प्रदान की ?
3. 'लियो री आँखी खोल' कथन से मीरा का क्या आशय है ?
4. मीरा को किस रत्न की प्राप्ति हुई ?
5. मीरा की भक्ति किस कोटि की है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मीरा की संसार के प्रति क्या धारणा है और वे अपने मन को क्या प्रेरणा देती है ?
2. मीरा ने राम रतन धन में क्या विशेषता पाई ?
3. 'मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम को कोल' यहाँ पूरब जनम को कोल से क्या तात्पर्य है ?
4. 'सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयो।' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
5. मीरा के अनुसार हमारी देह किस प्रकार की है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मीरा की भक्ति भावना पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. मीरा के पदों की काव्यगत विशेषता बताइए।
3. 'माई री! मैं तो लियो गोविन्दा मोल' पद का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित पद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) भजमन–चरण.....फाँसी।

(ख) मैंने राम रतन .....जस गायो।

•••

यह भी जानें

'छ' आकार में रहे। त्र के स्थान पर त्र का प्रयोग ही अपेक्षित है।

शृ का प्रयोग ही वांछित है (श्र का नहीं) जैसे – शृंगार, शृंखला आदि।

4. भूषण

कवि परिचय

रीतिकाल में जिन रचनाकारों ने श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों एवं प्रवृत्तियों को काव्य–सृजन का आधार बनाया, उनमें महाकवि भूषण अग्रगण्य है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के महान रक्षक शिवाजी और छत्रसाल की वीरता का ओजस्वी वर्णन करके हिंदी कविता की श्रीवृद्धि की।

भूषण कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव के निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। इनका जन्म सन् 1613 ई० में हुआ था। प्रसिद्ध कवि चिंतामणि और मतिराम इनके भाई कहे जाते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार इनका नाम घनश्याम था। इनको 'भूषण' की उपाधि चित्रकूट के राजा रुद्र सोलंकी से मिली थी परंतु अब इनका नाम भूषण ही काव्य जगत में प्रसिद्ध है।

भूषण अनेक राजाओं के आश्रय में रहे किन्तु इन्हें दो वीरों के आश्रय में रहने से ही विशेष मान मिला। वे थे महाराज शिवाजी और वीर छत्रसाल। उन्होंने औरंगजेब की नीतियों का विरोध कर उससे अनेक युद्ध किए थे। ऐसे महावीरों को चरितनायक बनाकर भूषण ने कविता को सार्थक किया। कहते हैं, महाराज छत्रसाल ने इन्हें सम्मान देने के लिए इनकी पालकी में कंधा लगाया था, तभी भूषण ने कहा था – ''सिवा कौ बखानों कै बखानों छत्रसाल कौ।'' इनका निधन सन् 1715 ई० में हुआ माना जाता है।

काव्य परिचय

भूषण के तीन काव्य–ग्रंथ प्राप्त हैं – शिवराजभूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक।

भूषण की कविता ब्रजभाषा में है। शिवाजी और छत्रसाल का शौर्यवर्णन उनके काव्य का मुख्य विषय है। शिवाजी की युद्धवीरता, दानशीलता, दयालुता, धर्मवीरता आदि का सजीव वर्णन ओजस्वी वाणी में इन्होंने किया है। इसी कारण भूषण वीररस के प्रथम कोटि के कवि माने जाते हैं।

अपनी कविता में भूषण ने ऐतिहासिक घटनाओं को बराबर ध्यान में रखा है जिससे वर्णनों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। उन्होंने अरबी, फारसी शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है। शब्दों को तुक मिलाने या प्रभाव पैदा करने के लिए तोड़ा–मरोड़ा भी खूब है। अनेक स्थलों पर व्याकरण के नियमों की भी चिंता नहीं की है, फिर भी वीर भावनाओं को उद्बुद्ध करने की उनमें अद्भुत क्षमता है। भूषण का काव्य वीर रस का पर्याय बन गया है।

पाठ संकेत

प्रस्तुत संकलन में भूषण के 5 छंदों में शिवाजी की वीरता वर्णित है। 5 छंद छत्रसाल की प्रशंसा से संबद्ध हैं। शिवाजी की वीरता की परंपरा–रूढ़ वर्णन प्रारंभ के दो छंदों में है। इनमें शिवाजी के आतंक से पीड़ित शत्रु–नारियों की दुर्दशा चित्रित है। शिवाजी की विजय एवं औरंगजेब आदि के शत्रुओं मानभंग का वर्णन है तथा औरंगजेब के सेनापतियों का भय वर्णित है।

शिवाजी की वीरता, युद्धवीरता, औरंगजेब के मन में शिवाजी के भय का सजीव वर्णन है। पाँचवें छंद में शिवाजी को भारतीय संस्कृति के महान रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है।

छत्रसाल विषय छंदों में प्रथम में छत्रसाल के आक्रमण, द्वितीय में उनकी महिमा, तृतीय में युद्धवीरता चतुर्थ में उनकी बरछी एवं पंचम में उनके प्रताप का ओजस्वी वर्णन है।

शिवाजी का शौर्य

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती है।
कंदमूल भोग करैं कन्दमूल भोग करें,
तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं।।
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं।।1।।
गढ़न गँजाय गढ़धरन सजाय करि,
छाँड़ि केते धरम दुवार दै भिखारी से।
साहि के सपूत पूत वीर सिवराजसिंह,
केते गढ़धारी किये वन वनचारी से।।
'भूषन' बखानैं केते दीन्हें बन्दीखानेसेख,
सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से।
महतो से मुगल महाजन से महाराज,
डाँडि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से।।2।।
दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग नाचे उग्ग पर रुण्ड मुँड फरके।
'भूषन' भनत बाजे जीति के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल लौं सरके।।
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के।
बीजापुर वीरन के, गोकुण्डा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके।।3।।
अंदर ते निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवा हू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं,
लाखन की भीरि में सम्हारतीं न छाती हैं।।
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,

हयादारी चीर फारि मन झुझलाती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं तें वनासपाती खाती हैं।।4।।
बेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम नाम राख्यो अति रसना सुधर में।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाहि,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज,
देवराखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में।।5।।

छत्रसाल की वीरता

रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह भूषण भनत गजराज जोम जमके।
भादौ की घटा सी उड़ि गरद गगन घिरे सेलैंसमसेरैं फिरे दामिनि सी दमके।
खान उमरावन के आन राजारावन के सुनि सुनि उर आगैं घन कैसे घमके।
बैयर बगारन की अरिके अगारन की लाँघती पगारन नगारन के धमके।।1।।

चाकचकचमू के अचाकचक चहूँ ओर, चाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही, काहू उमराव ना करेरी करवाल की।
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की, थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीतिलेवा तेऊ ह्वै कै दामदेवा भूप, सेवा लागे करन महेवा महिपाल की।।2।।

अस्त्रगहि छत्रसाल खिभयो खेत बेतबै के, उत तें पठानन हूँ कीन्ही झुकि झपटैं।
हिम्मति बड़ी कै कबड़ी के खेलवारन लौं, देत सै हजारन हजार बार चपटैं।
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कौं, सीसन कौं ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुँदेलन की सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं।।3।।

भुज–भुजनेस की बैसंगिनी भुजंगिनी सी खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन पैरि पार जात परबाह ज्यों जलन के।
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज भूषन सकै करि बखान को बलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे परछीने बीर तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।।4।।

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो, गाजत गयंद गिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत, ताप तजि दुज्जन करत बहुत ख्याल को।

साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हे, भूषन भनत ऐसो दीनप्रतिपाल को।
आन रावराजा एक मन में न लाऊँ अब, साहू को सराहों कै सराहौं छत्रसाल को।।5।।

•••

शब्दार्थ

मन्दर–भवन/ मन्दर–कन्दरा/ कंदमूल–मेवा, मिष्टान्न/ कन्दमूल–वृक्षों की जड़ें/ भूषन–आभूषण/ भूषन–भूख/ बिजन–पंखा/ बिजन–निर्जन/ नगनजड़ाती–नगीने जड़े हुए थे/ नगन जड़ाती–जाड़े में वस्त्रहीन काँपती है/ गंजाय–तोड़–फोड़ कर / हजारी–पंच हजारी, मनसबदार/ डांडि–दंड, जुरमाना/ गांजी–विजेता/ पगारन – परकोटा/ करेरी–कठोर/ जेर कीन्ही–हीन/ थप्पन–स्थापना/ उथप्पन–उठा देना/ खिभयो–क्रुद्ध हुआ। खेत–रणक्षेत्र/ कबड़ी–कबड्डी का खेल/चपटैं–चोट/ जपटैं–झपटती है/ समद लौं–समुद्र सम/ समद–अब्दुस्समद/ बैसंगिनी–जीवन भर साथ देने वाली/ खेदि–खदेड़कर/ बख्तर–कवच/ आफताब–सूर्य/ तुरी–तुरंग, घोड़ा।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भूषण ने किसे श्रेष्ठ वीर माना है –
   (क) अल्लाउद्दीन (ख) औरंगजेब
   (ग) मानसिंह (घ) शिवाजी ( )
2. 'चमू' का अर्थ है –
   (क) चक्र (ख) चमड़ा
   (ग) चमक (घ) सेना ( )

   उत्तरमाला – (1)घ (2) घ

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शिवाजी ने किसे आतंकित कर रखा था ?
2. 'तीन बेर खाती ते वैं तीन बेर खाती हैं' पटरानियों की ऐसी दशा किस कारण हुई?
3. 'कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं' पंक्ति में कौनसा अलंकार है ?
4. शिवाजी ने गढ़पतियों के साथ कैसा व्यवहार किया ?
5. भूषण ने छत्रसाल की भुजाओं की समता किससे की है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'भुज भुजगेस की बैसंगिनी भुजंगिनी' से क्या तात्पर्य है ?
2. 'तीन बेर खाती ते वैं तीन बेर खाती हैं' का अर्थ लिखिए।
3. शिवाजी के डर के कारण बेगमों पर क्या प्रभाव पड़ा ?
4. 'नासपाती खातीं तें वनासपाती खाती हैं' पंक्ति का अर्थ लिखिए।
5. छत्रसाल के प्रताप का वर्णन तीन पंक्तियों में कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'भूषण का काव्य वीर रस प्रधान है' उक्त कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए।
2. भूषण की काव्य कला की विशेषताएँ बताइए।

3. निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) ऊँचे घोर .....जड़ाती हैं।

(ख) चाक चक.....महिपाल की।

(ग) भुज भुजगेस.....खलन के।

(घ) अंदर ते.....खाती हैं।

•••

यह भी जानें

संयुक्त वर्ण

(क) खड़ी पाई वाले व्यंजन – खड़ी पाई वाले व्यंजनों के संयुक्त रूप परंपरागत तरीके से खड़ी पाई को हटाकर ही बनाए जाएँ। जैसे – ख्याति, लग्न, विघ्न, कच्चा, छज्जा, नगण्य, कुत्ता, व्यास, श्लोक, राष्ट्रीय, स्वीकृति, यक्ष्मा, यंबक आदि।

(ख) क और फ/फ़ के संयुक्ताक्षर – क और फ के हुक को हटाकर ही संयुक्ताक्षर बनाए जाएँ। जैसे संयुक्त, पक्का, दफ्तर आदि। न कि संयुक्त, पक्का की तरह।

(ग) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। जैसे – वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि। (वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, चिह्न, ब्रह्मा नहीं)

•••

5. बिहारी

कवि परिचय

कविवर बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हुए हैं। श्रृंगार रस की चमत्कारपूर्ण कविता करने वालों में ये अग्रगण्य हैं। इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविंदपुर में माथुर चतुर्वेदी परिवार में सन् 1595 में हुआ था। इनके पिता का नाम केशवराय था, जो प्रसिद्ध कवि केशवदास से भिन्न थे। बचपन में बिहारी को संस्कृत, प्राकृत, ज्योतिष आदि के अध्ययन का सुयोग मिला। बाद में वृंदावन आए और निंबार्क संप्रदाय में राधा–कृष्ण भक्ति की दीक्षा ली। इनकी काव्य–प्रतिभा से प्रसन्न होकर शाइजादा खुर्रम (जो बाद में शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के बादशाह हुए) इन्हें दिल्ली ले आए। वहाँ शाही दरबार में प्रतिष्ठा मिली, जिसे कई हिंदू राजाओं ने भी इन्हें सम्मान दिया। आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह ने इनकी वार्षिक वृत्ति बाँध दी। एक बार अपनी वृत्ति लेने जब आमेर पहुँचे तो वहाँ राजा जयसिंह, नवोढ़ा रानी के अनुराग में इस तरह आसक्त थे कि राजकाज ही भुला बैठे थे। सचेत करने के लिए बिहारी ने यह दोहा लिखकर राजा के पास भिजवाया –

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।
अली, कली ही सों बिंध्यो आगैं कौन हवाल।।''

दोहा पढ़कर जयसिंह की आँखें खुल गईं। इस अन्योक्ति से वे बहुत प्रभावित हुए। प्रसन्न होकर बिहारी को पुरस्कार रूप में जागीर दी। फिर बिहारी आमेर में ही स्थायी रूप से रहने लगे। इन्होंने राजा के कहने पर सात सौ दोहे लिखे, जो 'सतसैया' के नाम से विख्यात है। इनका निधन सन् 1663 में हुआ।

काव्य परिचय

बिहारी की एक मात्र कृति 'सतसैया' प्रसिद्ध है। इसमें कुल 713 दोहे हैं। इस पर शताधिक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। पूर्ण 'बिहारी रत्नाकर' नाम से प्रसिद्ध बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की टीका उत्कृष्ट है। 'सतसैया' में भक्ति, नीति, हास्य–व्यंग्य, वीरता, राजप्रशस्ति, धर्म, सत्संग–महिमा एवं श्रृंगार का वर्णन दोहों में किया है। कुछ कवित्त भी उनके रचे बताए जाते हैं परंतु प्रामाणिक नहीं हैं। एक ही रचना (सतसैया) से बिहारी को इतनी ख्याति मिली, यह उनकी काव्यगत उत्कृष्टता का ज्वलंत प्रमाण है।

भाव पक्ष

बिहारी मूलतः श्रृंगारी कवि थे। नायिकाओं के रूप–सौंदर्य, पूर्वानुराग, मान, प्रवास आदि के चमत्कारपूर्ण चित्र उनके काव्य में मिलते हैं। लज्जा, मद, अवहित्था, हर्ष, विबोध आदि संचारी भावों और नायक–नायिका की चेष्टाओं या अनुभावों का जैसा वर्णन सतसई में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। संयोग श्रृंगार में कवि का मन विशेष रूप से रमता था। फारसी पद्धति अपनाने के कारण नायिकाओं के विरह वर्णन अस्वाभाविक हो उठे हैं।

भक्तिपरक दोहों में वर्णित भक्तिभाव में भक्त कवियों जैसा ईश्वर–प्रेम और अनन्यभाव दिखाई पड़ता है।

कला पक्ष

बिहारी उच्चकोटि के काव्य शिल्पी थे। दोहा जैसे छोटे छंद में चुन–चुनकर व्यंजक शब्दों का प्रयोग करके कवि ने अर्थगांभीर्य कौशल दिखाया है। समास पद्धति अपनाकर भाषा की समाहार शक्ति से काम लिया है। इसीलिए कहा जाता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है। उनकी ब्रजभाषा इतनी सशक्त और शुद्ध है कि आलोचकों ने उसे मध्यकाल की मानक काव्यभाषा के रूप में स्वीकार किया है। अलंकारों का समुचित प्रयोग, प्रसंगानुकूल मधुर व्यंजक पदावली, सांकेतिक अभिव्यंजना शैली ऐसी विशेषताएँ हैं जो बिहारी को रीतिकाल में सर्वोपरि स्थान प्रदान करती है। उनकी भाषा में चित्रोपमता, नाद–सौंदर्य, लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग सहजता से हुआ है।

पाठ–परिचय

इस पाठ में बिहारी के भक्ति, शृंगार, नीति और प्रकृति संबंधी दोहों का संकलन किया गया है। भक्ति संबंधी दोहों में कवि ने चुनौतीपूर्ण भाषा में भगवान से अपने उद्धार की याचना की है तो कहीं नागरी राधा से भव–बाधा दूर करने की याचना की है। शृंगार संबंधी दोहों में नारी–सौंदर्य का वर्णन किया है। सतसई में शृंगार के दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण है। वियोग के दोहों में अतिशयोक्ति भी है। नीति के दोहों में कवि ने जीवन के यथार्थ रूप का वर्णन करते हुए आदर्श की बात कही है। ससुराल में रहने से जँवाई का मान घटता है। विनम्रता से ही व्यक्ति समाज में सम्मान पाता है। प्रकृति संबंधी दोहों में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया है। भावों की अभिव्यक्ति अनूठी है। अलंकारों के प्रयोग से अभिव्यक्ति में अधिक सौंदर्य आ गया है।

•••

दोहे

मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं, स्यामु हरित–दुति होइ।।1।।
करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी हो हुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल।।2।।
मोहूँ दीजै मोषु, ज्यों अनेक अघमनु दियौ।
जौ बाँधै ही तोषु, तौ बाँधौ अपनैं गुननु।।3।।
पतवारी माला पकरि और न कछु उपाउ।
तरि संसार–पयोधि कौं, हरि–नावैं करि नाउ।।4।।
तौ, बलियै, भलियै बनी, नागर नंद किसोर।
जौ तुम नीकैं कै लख्यौ मो करनी की ओर।।5।।
अब तजि नाउँ उपाव कौ, आए पावस–मास।
खेलु न रहिबौ खेम सौं केम–कुसुम की वास।।6।।
आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस–दिन मानु।।7।।

सुनत पथिक–मुँह, माह–निसि चलति लुवैं उहिं गाँम।
बिनु बूझैं, बिनु हीं कहैं, जियति बिचारी बाम।।8।।
नहिं पावसु, ऋतुराज यह, तजि तरवर चित–भूल।
अपतु भऐं बिनु पाइहै क्यौं नव दल, फल, फूल।।9।।
रुक्यौ साँकरैं कुंज–मग, करतु झाँझि झकुरातु।
मंद मंद मारुत–तुरँगु खूँदतु आवतु जातु।।10।।
तंत्री–नाद, कवित्त–रस, सरस–राग, रति–रंग।
अनबूड़े–बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।।11।।
कनक कनक तैं सौ गुनी, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐं बौराइ जगु, इहिं पाएँ बौराइ।।12।।
नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली, कली ही सौं बिंध्यौ, आगैं कौन हवाल।।13।।
नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौं ज्यौं माथैं मारियत, त्यौं त्यौं ऊँचे होत।।14।।
स्वारथु, सुकृत न श्रमु वृथा, देखि, बिहंग, बिचारि।
बाज, पराएँ पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि।।15।।
लाज–लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यौं, ऐंचत हूँ चलि जाहिं।।16।।
जोग–जुगति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय–अद्वैतता कानन सेवत नैन।।17।।
कौन सुनै, कासौं कहौं, सुरति विसारी नाह।
बदाबदी ज्यौ लेत हैं, ए बदरा बदराह।।18।।
कुटिल अलक छुटि परतमुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु।।19।।
रह्यौ ऐचि अंतु न लहै अवधि–दुसासनु बीरु।
आली, बाढ़तु विरह ज्यौं पांचाली कौ चीरु।।20।।
दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख–दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रवि–चंदु।।21।।
तिय कित कमनैती, पढ़ी बिनु जिहि भौंह कमान।
चलचित–बेझैं चुकति नहिं बंकबिलोकनि–बान।।22।।
आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह–बस सखी सबै ढिंग जाति।।23।।
कौड़ा आँसू–बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल।
कीने बदन निमूँद, दृग–मलिंग डारे रहत।।24।।

•••

शब्दार्थ

भव–बाधा–सांसारिक कष्ट/ झाँई–(इसके तीन अर्थ हैं) परछाई, झलक, ध्यान/ हरित–(इसके भी तीन अर्थ हैं) हरा रंग, हराभरा अर्थात् प्रसन्न, हर लेना या तेजहीन/ कुवत–कुबात/ मोषु–मुक्ति/ गुननु–गुणों से, रस्सी से/ पतवारी–पतवार, प्रतिज्ञा/ नावै–नाम/बलियै–बलिहारी/खेम–क्षेम/कैम–कदंब/तेजहिं–प्रकाश/ दिनभानु–सूर्य, दिन का मान/ अपतु–अपत्र, अमर्याद/साँकरै–संकीर्ण/ झकुरातु–झुकना/ विकास–विकसित, खिलना/ हुलसै रहैं–उल्लसित होता रहता/ गेंद के पोत–गेंद की वृत्ति/ मुँहजोर–शक्तिशाली मुख वाले, अधिक बोलने वाले/ जोग–योग, संयोग/ अद्वैतता– जीवन और ब्रह्म की एकता, सब काल के लिए एक हो जाना/ कानन सेवत–कानों तक आयत, वन में तपस्या करने वाला/ बदराह–कुमार्ग गामी/ बकारी–रुपये का अंकन करने का चिह्न/ दाम–दमड़ी/ पांचाली–द्रौपदी/ कमनैती–धनुर्विद्या/कौड़ा–कौड़ी/ मलिंग–फकीर।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं, श्यामु हरित–दुति होइ।।'
उपर्युक्त दोहे के किस शब्द में श्लेष अलंकार है ?
(क) नागरि सोइ (ख) भव–बाधा
(ग) तन (घ) हरित–दुति ( )

2. 'पौष मास में दिनमान प्रभावहीन हो जाता है', इस भाव को स्पष्ट करने के लिए किससे उपमा दी है ?
(क) अतिथि से (ख) जँवाई से
(ग) छोटे दिन से (घ) सूर्य की तेजी से ( )
उत्तरमाला– (1) घ (2) ख

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'त्रिभंगीलाल' शब्द का प्रयोग किसके लिए हुआ है ?
2. जनता का दुःख किस समय अधिक बढ़ जाता है ?
3. नायिका बादलों के किस व्यवहार से दुखी है ?
4. 'बाज, पराएँ पानि परि' कथन किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ?
5. 'कनक कनक तै सौ गुनी' में कौनसा अलंकार है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. तौ, बलियै, भलियै बनी, नागर नंद किसोर।
जौ तुम नीकैं कै लख्यौ मो करनी की ओर।।
उपर्युक्त दोहे में निहित कवि के मूलभाव को स्पष्ट कीजिए।
2. नायक ने नायिका की कमनैती की क्या विलक्षणता बताई है ?
3. कवि ने नीच व्यक्ति के स्वभाव की क्या विशेषता बताई है ?

4. 'अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े, सब अंग' पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'बिहारी अपनी बात कहते किसी से हैं और उसका प्रभाव किसी और पर पड़ता है।' उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. 'बिहारी के दोहों में भावों की सघनता है' सप्रमाण स्पष्ट कीजिए।
3. बिहारी की वाक्पटुता सराहनीय है, उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर बिहारी के काव्य की विशेषता बताइए –
   (क) अलंकार योजना (ख) प्रकृति वर्णन
   (ग) उक्ति वैचित्र्य (घ) भाषा
5. निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –
   (क) कौड़ा आँसू.....डारे रहत।
   (ख) जोग–जुगति .....सेवत नैन।
   (ग) अब तजि नाउ .....कुसुम की वास।
   (घ) नीच हियै .....ऊँचे होत।

•••

यह भी जानें –

(क) संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे। जैसे – प्रकार, धर्म, राष्ट्र

(ख) 'श्र' का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे 'श्र' के रूप में नहीं लिखा जाएगा।

(ग) त्+र के संयुक्त रूप के लिए त्र का ही प्रयोग किया जाएगा 'त्र' का नहीं।

•••

6. मैथिलीशरण गुप्त

कवि परिचय

भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने का आह्वान करने एवं भारतीय संस्कृति की तात्त्विक विशेषताओं को अपने प्रबंध–काव्यों के माध्यम से व्याख्या करने के कारण मैथिलीशरण गुप्त 'राष्ट्रकवि' के रूप में जाने–माने गए हैं। आपका जन्म 1886 ई० में चिरगँव, जिला झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आपकी शिक्षा घर पर ही हुई, परन्तु काव्य–दीक्षा 'सरस्वती' के स्वनामधन्य संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा प्राप्त हुई। आपके 'भारत–भारती' नामक काव्य को अतीव लोकप्रियता प्राप्त हुई और भारत के राष्ट्रीय जागरण में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा। आपकी सभी कविताओं में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिकता का उन्मेष दिखाई पड़ता है। 'साकेत' आपका श्रेष्ठ काव्य है, जिसमें राम के पावन चरित्र को आधुनिक परिवेश में उपस्थित करने के साथ ही उपेक्षिता उर्मिला के आँसू पोंछने का प्रयास भी किया गया है।

मैथिलीशरण गुप्त सरल–निश्छल स्वभाव के आदर्श पुरुष थे, जो संपूर्ण हिंदी जगत् में 'दद्दा' के नाम से विख्यात थे। बीसवीं शताब्दी के हिंदी कवियों की कई पीढ़ियों को आपकी कविता ने भाव और भाषा की दृष्टि से प्रभावित किया है। राष्ट्रीय आंदोलन के सभी स्वरों को आपने अपने काव्य के द्वारा मुखरित किया है। आपको उत्तरी भारत के सांस्कृतिक नव–जागरण का प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है। आपने प्रबंध–काव्य भी लिखे हैं और मुक्तक कविताओं की भी रचना की है। आपके खण्डकाव्य विशेष लोकप्रिय हुए हैं।

गुप्त जी ने खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, नाटक एवं अनूदित काव्य आदि विधाओं में लिखा है। इनकी रचनाओं में 'भारतभारती', 'जयद्रथवध', 'पंचवटी', 'गुरुकुल', 'झंकार' 'साकेत', 'यशोधरा' 'द्वापर', 'जयभारत', 'सिद्धराज', 'विष्णु प्रिया' आदि विशेष उल्लेखनीय है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ में आए पद्य 'भारत–भारती' से उद्धृत हैं। इस पाठ में गुप्त ने भारतीय प्राचीन परंपराओं का चित्रण किया है। गुप्त जी ने भारत भूमि को ब्राह्मी स्वरूपा और ज्ञान विज्ञान का केंद्र बताया है। भारत भूमि धन–धान्य से पूर्ण है एवं समस्त प्राणियों का पालन–पोषण करने वाली है। कवि ने भारत भूमि के आज बदलते स्वरूप पर भी चिंता व्यक्त की है। भवन की विशेषता बताते हुए कहा कि यहाँ के मंदिर बहुत ऊँचे थे और उन पर लगी ध्वजा आकाश तक फहराया करती थी। यहाँ का जल भी अमृत के समान है। यहाँ के पानी को पीकर आलस्य का नाश हो जाता है तथा बल और विक्रम प्राप्त होता है। यहाँ की प्रातःवेला हमें कर्मरत होने की प्रेरणा देती है। स्नान के पश्चात यहाँ दान का भी अत्यधिक महत्व है। प्राचीन भारत में दान करने वाले अधिक थे किंतु दान प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत ही कम थी। भारत में गाय को माता माना गया है। गाय का दूध अमृत के समान होता है। जिस घर में गाय होती है वहाँ शक्ति का भंडार होता है। यहाँ के राजा–रंक, नर–नारी नित्य मंदिरों में जाते हैं और ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त कर दृढ़ता से कर्त्तव्य पालन करते हैं। भारत में अतिथि को भगवान माना गया है। अतिथियों के आगमन से हमारे घर पवित्र हो जाते हैं। यहाँ पुरुष सदाशय हैं, उनका यश संसार में फैला

रहता है, मुख पर कांति रहती है तथा वे देवताओं के समान सुशोभित होते हैं। स्त्रियाँ भी कम नहीं हैं। वे निरंतर कार्य में लगी रहती हैं। उनमें आलस्य, प्रमाद नाममात्र का भी नहीं है। साथ ही वे धीरता, सांत्वना की प्रतिमूर्ति हैं तथा शुभ करने वाली हैं।

भारत भूमि

ब्राह्मी–स्वरूपा, जन्मदात्री, ज्ञान–गौरव–शालिनी,
प्रत्यक्ष लक्ष्मीरूपिणी, धन–धान्यपूर्णा, पालिनी,
दुर्द्धर्ष रुद्राणी स्वरूपा शत्रु–सृष्टि–लयंकरी,
वह भूमि भारतवर्ष की है भूरि भावों से भरी।।1।।

वे ही नगर, वन, शैल, नदियाँ जो कि पहले थीं यहाँ –
हैं आज भी, पर आज वैसी जान पड़ती हैं कहाँ ?
कारण कदाचित् है यही–बदले स्वयं हम आज हैं,
अनुरूप ही अपनी दशा के दीखते सब साज हैं।।2।।

भवन

चित्रित घनों से होड़ कर जो व्योम में फहरा रहे–
वे केतु उन्नत मन्दिरों के किस तरह लहरा रहे ?
इन मन्दिरों में से अधिक अब भूमितल में दब गये,
अवशिष्ट ऐसे दीखते हैं अब गये या तब गये।।3।।

जलवायु

पीयूष–सम, पीकर जिसे होता प्रसन्न शरीर है,
आलस्य–नाशक, बल–विकासक उस समय का नीर है।
है आज भी वह, किन्तु अब पड़ता न पूर्व प्रभाव है,
यह कौन जाने नीर बदला या शरीर–स्वभाव है ?।।4।।

प्रभात

क्या ही पुनीत प्रभात है, कैसी चमकती है मही;
अनुरागिणी ऊषा सभी को कर्म में रत कर रही।
यद्यपि जगाती है हमें भी देर तक प्रतिदिन वही,
पर हम अविध निद्रा–निकट सुनते कहाँ उसकी कहीं ?।।5।।

दान

सुस्नान के पीछे यथाक्रम दान की बारी हुई,
सर्वस्व तक के त्याग की सानन्द तैयारी हुई।
दानी बहुत हैं किन्तु याचक अल्प हैं उस काल में,
ऐसा नहीं जैसी कि अब प्रतिकूलता है हाल में।।6।।

गो–पालन

जो अन्य धात्री के सदृश सबको पिलाती दुग्ध हैं,
(है जो अमृत इस लोक का, जिस पर अमर भी मुग्ध हैं।)
वे धेनुएँ प्रत्येक गृह में हैं दुही जाने लगी–
यो शक्ति की नदियाँ वहाँ सर्वत्र लहराने लगीं।।7।।
घृत आदि के आधिक्य से बल–वीर्य का सु–विकास है,
क्या आजकल का–सा कहीं भी व्याधियों का वास है ?
है उस समय गो–वंश पलता, इस समय मरता वही।
क्या एक हो सकती कभी यह और वह भारत मही ?।।8।।

होमाग्नि

निर्मल पवन जिसकी शिखा को तनिक चंचल कर उठी–
होमाग्नि जलकर द्विज–गृहों में पुण्य परिमल भर उठी।
प्राची दिशा के साथ भारत–भूमि जगमग जग उठी,
आलस्य में उत्साह की–सी आग देखो, लग उठी।।9।।

देवालय

नर–नारियों का मन्दिरों में आगमन होने लगा,
दर्शन, श्रवण, कीर्त्तन, मनन से मग्न मन होने लगा।
ले ईश–चरणामृत मुदित राजा–प्रजा अति चाव से–
कर्त्तव्य दृढ़ता की विनय करने लगे समभाव से।।10।।

अतिथि–सत्कार

अपने अतिथियों से वचन जाकर गृहस्थों ने कहे –
''सम्मान्य! आप यहाँ निशा में कुशलपूर्वक तो रहे।
हमसे हुई हो चूक जो कृपया क्षमा कर दीजिए –
अनुचित न हो तो, आज भी यह गेह पावन कीजिए।।11।।

पुरुष

पुरुष–प्रवर उस काल के कैसे सदाशय हैं अहा!
संसार को उनका सुयश कैसा समुज्ज्वल कर रहा!
तन में अलौकिक कान्ति है, मन में महा सुख–शान्ति है,
देखो न, उनको देखकर होती सुरों की भ्रान्ति है! ।।12।।

स्त्रियाँ

आलस्य में अवकाश को वे व्यर्थ ही खोती नहीं,
दिन क्या, निशा में भी कभी पति से प्रथम सोती नहीं,
सीना, पिरोना, चित्रकारी जानती हैं वे सभी –

संगीत भी, पर गीत गन्दे वे नहीं गातीं कभी।।13।।
संसार–यात्रा में स्वपति की वे अटल अश्रान्ति हैं,
हैं दुःख में वे धीरता, सुख में सदा वे शान्ति हैं।
शुभ सान्त्वना है शोक में वे, और ओषधि रोग में,
संयोग में सम्पत्ति हैं, बस हैं विपत्ति वियोग में।।14।।

शब्दार्थ

जन्मदात्री–जन्म देने वाली/ लक्ष्मीरूपिणी–धन की देवी लक्ष्मी का रूप/शैल–पर्वत/ अवशिष्ट–बचे हुए अवशेष/व्योम–आकाश/पीयूष–अमृत/अनुरागिणी–प्रेम से परिपूर्ण/ निद्रा–नीद/ सर्वस्व–सब कुछ/ धात्री–धाय माँ/ धेनुएँ–गाएँ/ घृत–घी/ व्याधियों – बीमारियों/ शिखा–चोटी/द्विज–ब्राह्मण/ ईश–ईश्वर/ गेह–घर/ प्रवर–श्रेष्ठ/ चित्रकारी–चित्रकला/अश्रान्ति–विश्राम रहित / स्वपति–अपने पति/

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतवर्ष की भूमि किससे भरी हुई है ?
   (क) घृत से (ख) भावों से ( )
   (ग) पर्वतों से (घ) नदियों से
2. यहाँ का जल कैसा है ?
   (क) अमृत के समान (ख) गरल के समान
   (ग) गर्म (घ) खारा ( )

उत्तरमाला – (1) ख (2) क

अति लघूत्तरात्मक

1. 'ज्ञान–गौरव–शालिनी' किसके लिए कहा गया है ?
2. यहाँ की जलवायु कैसी है ?
3. जल पीकर कौन प्रसन्न होता है ?
4. दान करने की बारी कब आती है ?
5. इस लोक का अमृत क्या है ?
6. पत्नी संयोग में क्या होती है ?

लघूत्तरात्मक

1. प्राचीन समय का नीर किस प्रकार का था ?
2. घृत के आधिक्य से किसका विकास होता है ?
3. यहाँ की प्रभात वेला किस प्रकार की है ?
4. नर–नारी देवालयों में क्या करते हैं ?
5. यहाँ के पुरुष कैसे हैं ?

निबंधात्मक

1. भारत भूमि की विशेषताएँ पाठ में आए पद्यांशों के आधार पर बताइए।
2. गो–पालन के महत्व को पाठ में आए पद्याशों के आधार पर समझाइए।

3. यहाँ के पुरुषों की विशेषताएँ बताइए।

4. निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

(क) अपने अतिथियों से.....पावन कीजिए।

(ख) सुस्नान के पीछे .....है हाल में।

(ग) संसार–यात्रा में.....विपत्ति वियोग में।

•••

यह भी जानें

हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ 'इ' की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व। जैसे – कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित आदि (कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित नहीं।)

टिप्पणी – संस्कृत भाषा के मूल श्लोकों को उद्धृत करते समय संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे। जैसे – संयुक्त, चिह्न, विद्या, चञ्चल, विद्वान, वृद्ध, द्वितीय, बुद्धि आदि। किंतु यदि इन्हें भी उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही लिखा जाए तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

•••

7. बावजी चतुर सिंह जी

कवि परिचय

राजस्थान में कर्मशील मनुष्यों के साथ ही वीतरागी भक्तों का भी प्रमुख स्थान है। ऐसे ही एक महात्मा बावजी चतुर सिंह जी हैं। इनका जन्म वि० संवत् 1936 माघ कृष्णा चतुदर्शी (9 फरवरी 1880) को हुआ। योगीवर्य महाराज चतुरसिंह जी मेवाड़ की भक्ति परंपरा के एक परमहंस व्यक्तित्व थे। इस संत ने लोकवाणी मेवाड़ी के माध्यम से अपने अनुभूत विचारों को साहित्य द्वारा जन–जन के लिए सहज सुलभ बना कर मानव की बहुत बड़ी सेवा की। वे मेवाड़ राजपरिवार से संबंधित थे। चतुरसिंहजी की वाणी दिव्य थी क्योंकि वे दिव्यता के पोषक थे। उनका चिंतन उदात्त था क्योंकि वे अनुपम सौंदर्य के उपासक थे। उनका संबोधन आत्मीय था क्योंकि वे आत्मरूप थे। इन्होंने कुल छोटे–बड़े 18 ग्रंथों की रचना की। मेवाड़ी बोली में लिखी गई गीता पर ''गंगा–जलि'' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत दोहे 'चतुर चिन्तामणि' से उद्धृत हैं। 'चतुर चिन्तामणि' चतुरसिंह जी बावजी की प्रमुख कृतियों में से एक है। इस पोथी में चतुरसिंह जी के मेवाड़ी, हिंदी और ब्रज मिश्रित भाषा के दोहे व पद संकलित हैं। नीति और वैराग्य के संकलित दोहों में चतुर सिंह ने सामान्य लोक व्यवहार का चित्रण ललित व सुंदर सरल भाषा में किया है। वे कहते हैं कि सभी धर्मों का उद्देश्य एक है परंतु उस उद्देश्य को पाने के मार्ग अलग–अलग हैं। हमें बिना मान के किसी के भी घर में पैर नहीं रखना चाहिए। मनुष्य जन्म तो सभी लेते हैं लेकिन वही मनुष्य, मनुष्य है जो भलाई का कार्य करता है। हमें हर किसी के सामने अपने मन की बात नहीं कहनी चाहिए। उपयुक्त पात्र देखकर ही मन की बात कहनी चाहिए। जिन्हें अपने लक्ष्य का पता होता है वे कहीं भी नहीं भटकते। किसी भी वस्तु की सार्थकता उसके पर्याप्त होने में है, कम या अधिक होने से उस वस्तु की सार्थकता नहीं रहती। ताँगे चलाने वाले तो चले जाते हैं किन्तु ताँगा यहीं रह जाता है, इसी प्रकार आत्मा चली जाती है शरीर यहीं छूट जाता है। कवि ने अपने दोहों में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के साथ–साथ नीति और लोक व्यवहार को सरल उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया है। उदाहरणों द्वारा किसी बात को कहने की कला में बावजी सिद्धहस्त हैं।

नीति

धरम धरम सब एक है, पण वरताव अनेक।
ईश जाणणो धरम है, जींरो पंथ विवेक।।1।।
पर घर पग नी मेळणों, वना मान मनवार।
अंजन आवै देख'नै, सिंगल रो सतकार।।2।।
रेंठ फरै चरक्यो फरै, पण फरवा में फेर
वो तो वाड़ हरयौ करै, यो छूंता रो ढेर।।3।।
कारट तो केतो फरै, हरकीनै हकनाक।

जींरी व्है वींनै कहै, हियै लिफाफो राख।।4।।
वी भटका भोगै नहीं, ठीक समझलै ठौर।
पग मेल्यां पेलां करै, गेला ऊपर गौर।।5।।
क्यूं कीसूं बोलूं कठै, कूण कई कीं वार।
ई छै वातां तोल नै, पछै बोलणो सार।।6।।
ओछो भी आछो नहीं, वत्तो करै कार।
दैणों छावै देखनै, अगनी मुजब अहार।।7।।
अपनी आण अजाणता, कईक कोरा जाय।
समझदार समझै सहज, आंख इशारा मांय।।8।।
क्षमा क्षमा सब ही करै, क्षमा न राखै कोय।
क्षमा राखिवैं तै कठिन, क्षमा राखिवौ होय।।9।।
विद्या विद्या वेल जुग, जीवन तरु लिपटात
पढिबौ ही जल सींचिबौ, सुख दुख को फल पात।।10।।

वैराग्य एवं चेतावनी

रेल दौड़ती ज्यूं घणा, रूंख दोड़ता पेख।
तन नै जातो जाण यूं, दन नै जातो देख।।11।।
गाता रोता नीकळ्या, लड़ता करता प्यार।
अणी सड़क रै ऊपरै, अब लख मनख अपार।12।।
गोखड़िया खड़िया रया, कड़िया झांकणहार।
खड़खड़िया पड़िया रया, खड़िया हाकणहार।।13।।
गेला नै जातो कहै, जावै आप अजाण।
गेला नै रवै नहीं, गेला री पैछाण।।14।।
धन दारा रै मांयनै, मती जमारो खोय।
वणी अणी रा वगत में, कूण कणी रा होय।।15।।

•••

शब्दार्थ

वरताव–व्यवहार/ ईश–ईश्वर/ पंथ–रास्ता, मार्ग/ पर–दूसरे/ मेळणों–रखना/ मनवार–सत्कार/ अंजन–इंजन/ सिंगल–सिग्नल/ रैंठ–रहठ/ चरक्यो–चरखा/ पण –परंतु/ फरबा–फिरने/ हर्‌यो–हरा–भरा/ छूंता–छिलका/ कारट–पोस्टकार्ड/ हकनाक–गोपनीय/ हियै–हृदय/ कठै–कहाँ/ बोलणो–बोलना/ वातां–बातें/ ठौर – स्थान/ पग–पैर/ मेल्यां–रखना/ गेला–रास्ता/ गौर–विचार/ ओछो–कम/ आछो – अच्छा/ अगनी–अग्नि/ अहार–आहार/ कईक–कोई–कोई/ कोरा–व्यर्थ/ वेल–बेल, लता/ तरु–वृक्ष, पेड़/ घणा–बहुत/ रूंख–पेड़/ दन–दिवस, दिन/ जातो–जाता

हुआ / जाण–पहचान, समझ / गोखड़िया–गोखड़े / खड़खड़िया–ताँगे / हाकणहार – हाँकने वाले / अजाण–अज्ञानी / गेला–मूर्ख

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. दूसरों के घर बिना मान–मनुहार के जाने पर क्या होता है ?
   (क) स्वागत होता है (ख) अपमान होता है
   (ग) नाच–गाना होता है (घ) सिग्नल मिलता है ( )
2. रहट चलता है तब क्या होता है –
   (क) खेतों को पानी मिलता है (ख) छिलकों का ढेर होता है
   (ग) अकाल पड़ता है (घ) गन्ने का रस मिलता है ( )

   उत्तरमाला– (1) ख (2) क

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चतुरसिंह जी के अनुसार धर्म क्या है ?
2. सिंगल का शब्दार्थ क्या है ?
3. छिलकों का ढेर कौन करता है ?
4. बातों को गोपनीय कौन रखता है ?
5. कैसा व्यक्ति नहीं भटकता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. रहट और चरखे में क्या अंतर है ?
2. बिना मान के दूसरों के घर पैर क्यों नहीं रखना चाहिए ?
3. इंजन सिग्नल की बात क्यों मानता है ?
4. 'गोखड़िया खड़िया' वाले पद में किस बात की ओर संकेत है ?
5. मूर्ख व्यक्ति की बात मानने से क्या होता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित दोहों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –
   (क) पर घर पग.....सिंगल रो सतकार।
   (ख) रैंठ फरै.....छूंता रो ढेर।
   (ग) कारट तो केता.....हियै लिफाफो राख।
   (घ) ओछो भी .....मुजब अहार।
2. ''बावजी चतुरसिंह जी वाणी दिव्य थी।'' उक्त पंक्ति के आलोक में चतुरसिंह जी के नीति और वैराग्य संबंधी विचारों की समीक्षा कीजिए।

•••

यह भी जानें

कारक चिह्न या परसर्ग

(क) हिंदी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रातिपदिक से पृथक् लिखे जाएँ। जैसे – राम ने, राम को, राम से, स्त्री का, स्त्री से, सेवा में आदि। सर्वनाम शब्दों में ये

चिह्न प्रातिपदिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे – तूने, आपने, तुमसे, उसने, उसको, उससे, उसपर, मुझको, मुझसे आदि। (मेरेको, मेरेसे आदि रूप व्याकरण सम्मत नहीं हैं।)

(ख) सर्वनामों के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक लिखा जाए। जैसे – उसके लिए, इसमें से।

(ग) सर्वनाम और कारक चिह्न के बीच 'ही', 'तक' आदि निपात हों तो कारक चिह्न को पृथक लिखा जाए। जैसे – आप ही के लिए, मुझ तक को।

•••

8. सुमित्रानंदन पंत

कवि परिचय

पंत जी प्रकृति की क्रोड़ में पलने वाले अत्यंत सुकुमार कवि हैं। नवीन युग में प्रवाहित प्रमुख प्रवृत्तियों एवं विचार धाराओं की रूप रेखाएँ स्पष्ट या अस्पष्ट स्वरूप में उनके काव्य में मिल जाएँगी। प्रकृति निरीक्षण से उन्हें कविता की प्रेरणा मिली। उनकी जन्म भूमि कूर्मांचल प्रदेश की सौंदर्यात्मक अनुभूति ने उनकी सारी भावनाओं को रंग दिया। 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक की सभी रचनाओं में यह विशेषता किसी न किसी रूप में वर्तमान है; पंत जी के भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना भी इसी कारण आ गई। उनकी कल्पना जन–भीरु हो गई। प्रकृति को उन्होंने सदैव ही सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है। 'वीणा' और 'पल्लव' उनकी समस्त रचनाओं में विशेषतः प्राकृतिक साहचर्य–काल की कृतियाँ हैं। भारतीय दर्शन से प्रभावित होकर वे 'पल्लव' से 'गुंजन' में सुन्दरम् से शिवम् की ओर अधिक झुक गए। 'गुंजन' तथा 'ज्योत्स्ना' में कल्पना अधिक सूक्ष्म तथा भावात्मक हो गए।

छायावादी कवियों में पंत जी ऐसे कवि हैं जिन पर पाश्चात्य प्रभाव बहुत अंश तक पड़ा। वर्डस्वर्थ, कीट्स, शेली तथा टेनिसन आदि अंग्रेजी के कवि तथा रवींद्र इन सबके प्रभाव को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। 'युगान्त', 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' इन तीनों में उनकी विचारधारा का मोड़ नामकरण से ही प्रतीत होता है। जीवन की समस्याओं के प्रति जागरूक होकर जो कविताएँ उनकी लेखनी से उद्धृत हुईं वे सब इन संग्रहों में संकलित हैं।

पंत जी की भाषा में कोमलता है। उसमें कलात्मकता का आग्रह न होने पर भी सौंदर्य है। शब्द–ध्वनि की परख उन्हें चित्रों में झंकार उत्पन्न करने में सदा सहायता देती रहती है। खड़ी बोली को वे ब्रजभाषा की–सी मधुरता अपने शब्द चयन की सजगता द्वारा प्रदान करते हैं। विचार पक्ष को वे कलापक्ष से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं इसी कारण वे इस शब्द कौशल की ओर आगे चलकर अधिक ध्यान न दे सके।

पाठ परिचय

प्रस्तुत तीन कविताओं में प्रथम कविता में कवि बादलों से पृथ्वी पर बरसने की प्रार्थना करता है। वर्षा का जल भूमि में प्राणों का संचार कर देता है। वह नव जीवन का संदेश देता है। बारिश से धरती उपजाऊ होती है। यह वृक्षों, पत्तों और तिनकों में नई स्फूर्ति पैदा कर देता है। प्राणों को हर्षित करने वाला जल अमर धन के समान है। कवि प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे जलद! तुम दिशा–दिशाओं में और सारे संसार पर बरसो।

द्वितीय कविता में कवि ने संध्या काल का मनोहारी वर्णन किया है। यहाँ संध्या को सुंदरी बताया है। संध्याकाल की सुषमा एवं लालिमा का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। आकाश से उतरने वाली संध्या से वातावरण सुनहला हो जाता है। वातावरण में एक मीठा मौन व्याप्त है। संध्या को सुंदरी की उपमा देते हुए कवि कहता है कि संध्या भावों में भर कर मौन है। कवि पूछता है कि तुम दिन भर कहाँ रहती हो ? संध्या रूपी सुंदरी के गाल लाल–लाल हो रहे हैं।

'द्रुत झरो' कविता में कवि प्राचीन सड़ी–गली परंपराओं के नष्ट होने की बात करता है। कवि नव युग चाहता है जहाँ अंधविश्वास और वैमनस्य से रहित संसार हो। कवि चाहता है कि पुराने पत्ते शीघ्र गिर जाएँ और नए पत्ते आ जाएँ। निष्प्राण पुराना युग जाए और आशापूर्ण नव युग आ जाए। जीवन में फिर से नई हरियाली आए। कवि आशा करता है कि विश्व में वापस चेतना आएगी और फिर से नवयुग की प्याली भरेगी।

•••

प्रार्थना

जग के उर्वर आँगन में,
बरसो ज्योतिर्मय जीवन।
बरसो लघु लघु तृण तरु पर,
हे चिर–अव्यय चिर–नूतन!
बरसो कुसुमों के मधुवन,
प्राणों के अमर प्रणय धन,
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में,
उर अंगों में सुख यौवन।
छू–छू जग के मृत रजकण
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण बाँध दो जग का,
दे प्राणो का आलिंगन!
बरसो सुख बन सुखमा बन,
बरसो जग–जीवन के घन!
दिशि–दिशि में औ पल–पल में
बरसो संसृति के सावन!

सन्ध्या

कौन, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप,
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश–कलाप,
मधुर, मंथर मृदु, मौन!
मूँद अधरों में मधुपालाप,
पलक में निमिष, पदों में चाप,
भाव संकुल बंकिम भ्रू–चाप,

मौन केवल तुम मौन!
ग्रीव तिर्यक्, चम्पक द्युति गात,
नयन मुकुलित नतमुख जलजात,
देह छबि छाया में दिन रात,
कहाँ रहती तुम कौन ?
अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुर–ध्वनि खग–कुल रोल,
सीप से जलदों के पर खोल,
उड़ रही नभ में मौन!
लाज से अरुण–अरुण सुकपोल,
मदिर अधरों की सुरा अमोल–
बने पावस घन स्वर्ण–हिंडोल,
कहो एकाकिनि कौन ?
मधुर, मंथर तुम मौन।

द्रुत झरो

द्रुत झरो जगत के जीर्णपत्र
हे स्रस्त ध्वस्त! हे शुष्क शीर्ण!
हिमताप पीत, मधुवात भीत
तुम वीत राग जड़ पुराचीन!!
निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग!
जग नीड़ शब्द और श्वासहीन
च्युत अस्त व्यस्त पंखों से तुम,
झर–झर अनन्त में हो विलीन!
कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर–पल्लव लाली!
प्राणों के मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली!
मंजरित विश्व में यौवन के
जगकर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से
भर दे फिर नवयुग की प्याली।

शब्दार्थ –

उर्वर–उपजाऊ / तरु–वृक्ष / अव्यय–व्यय न होने वाला, विकार रहित / उर–हृदय / मृन्मरण–मृत्यु का मरण / संस्सृति–संसार / रूपसि–सुंदर स्त्री / व्योम–आकाश / छवि –आकृति / केश–कलाप–केश विन्यास / मर्मर–पत्तों की खड़कन / मंजरित–पुष्पित / मंथर–धीरे / अधर–होठ / बंकिम–टेढ़ा / मदिर–नशीला / तिर्यक्–तिरछा / गात–शरीर / द्रुत–शीघ्र / जीर्ण–पुराने, जर्जर / स्रस्त–गिरा हुआ / पीत–पीला / वीतराग–सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति रहित / पुराचीन–प्राचीन / विहंग–पक्षी / च्युत–भ्रष्ट, अलग / रुधिर पल्लव–रक्त वर्ण की कोंपलें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आँगन को उर्वर कौन करता है ?

   (क) खाद (ख) केंचुए

   (ग) वर्षा का जल (घ) किसान ( )

2. कवि ने संध्या की तुलना किससे की है ?

   (क) सुंदर स्त्री से (ख) सुंदर पुरुष से

   (ग) लालिमा से (घ) नुपुर–ध्वनि से ( )

   उत्तरमाला–(1) ग (2) क

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भूमि को उर्वर कौन बनाता है ?
2. व्योम से चुपचाप कौन उतर रही है ?
3. लज्जा से किसके गाल लाल–लाल हो रहे हैं ?
4. श्वासहीन कौन–सा युग है ?
5. मतवाली कौन है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कवि का जगत के जीर्णपत्र के क्या अभिप्राय है ?
2. विगत युग को निष्प्राण क्यों कहा गया है ?
3. जीवन में मांसल हरियाली कब आएगी ?
4. कवि प्याली को किससे भरने की बात कहता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. कवि ने बादलों से क्या प्रार्थना की है ?
2. पठित कविता के आधार पर संध्या का वर्णन कीजिए।
3. निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

   (क) द्रुत झरो जगत.....पुराचीन!!

   (ख) अनिल पुलकित.....नभ में मौन!

•••

यह भी जानें

संयुक्त क्रिया पद

संयुक्त क्रिया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक्–पृथक् लिखी जाएँ। जैसे– पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, किया करता था, पढ़ा करता था, खेला करेगा, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि।

9. नंदलाल जोशी

कवि परिचय

कविवर नंदलाल जोशी का जन्म बाड़मेर में हुआ। पढ़ने में अत्यंत मेधावी, सबसे आगे रहने वाले नंदलाल जोशी ने कक्षा 11 तक की शिक्षा बाड़मेर में प्राप्त की, तदुपरान्त उच्च शिक्षा हेतु जोधपुर आ गए। जोधपुर के एम.बी.एम. इंजीनियरिंग कॉलेज से आपने सन् 1968 में माइनिंग में बी.ई. की उपाधि स्वर्ण पदक के साथ प्राप्त की। उच्च शिक्षित एवं स्वर्ण पदक विजेता होने के कारण आपको कई बड़ी कंपनियों ने उच्च पदों पर नौकरी के प्रस्ताव दिए। आपने माँ भारती की सेवा करने का मार्ग चुना, न कि नौकरी का। आप अविवाहित रहकर देश सेवा में लीन हैं। आज भी एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र सेवार्थ लगा रखा है।

विज्ञान के विद्यार्थी होते हुए भी आप में काव्य प्रतिभा जन्म से ही थी। आपकी पूज्य माताजी ने कृष्ण लीला के पदों को गा–गाकर आपकी बीज रूप काव्य प्रतिभा को पुष्पित एवं पल्लवित किया। आपने अब तक 211 राष्ट्र प्रेम के गीत तथा 161 ईश भक्ति के भजनों की रचना की और उन्हें अपना स्वर दिया है। आपकी ये सब रचनाएँ 'प्रेरणा पुष्पांजलि' एवं 'भक्ति हिलौरें' नामक पुस्तकों में प्रकाशित हैं। आपकी रचनाएँ जहाँ ईश भक्ति की गंगा प्रवाहित करती हैं, वहीं राष्ट्र प्रेम का ज्वार उठाती हैं। योग गुरु बाबा रामदेव आपकी रचना ''मन मस्त फकीरी धारी है, अब एक ही धुन जय जय भारत'' को राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर गा–गाकर लोगों को मस्त कर रहे हैं।

पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ में श्री नंदलाल जोशी के दो गीत लिए गए हैं। हिंदी साहित्य में गीत लेखन की परंपरा है। गीत में नाद और भाव का प्राधान्य होता है। भक्ति और प्रेम भाव को लेकर अनेक गीतों की रचना होती रही है। सोहनलाल द्विवेदी के राष्ट्रभक्ति गीत प्रसिद्ध हैं। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भी विविध देशभक्ति गीतों का सहज समावेश है। भक्ति जब राष्ट्र के प्रति हो, प्रेम का केंद्र बिंदु मातृभूमि हो तो ऐसे गीतों की सृष्टि होती है।

प्रथम गीत 'देश उठेगा' में भारत को स्वावलंबी और स्वाभिमानी बनाने की न केवल कामना है, बल्कि इसी मार्ग से भारत विश्व में अग्रणी हो सकता है। कवि देशवासियों को आह्वान करता है कि केवल अधिकारों के प्रति जागरुक होने से काम नहीं चलने वाला, हमें अपने कर्तव्यों को भी नहीं भूलना चाहिए। द्वितीय गीत 'गौरवशाली परम्परा' में कवि ने भारत के अतीत गौरव का चित्रण किया है। प्राचीन काल में हम ज्ञान–विज्ञान में विश्व में सिरमौर थे, तभी तो यहाँ विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति पल्लवित–पुष्पित हुई।

देश उठेगा

देश उठेगा अपने पैरों निज गौरव के भान से।
स्नेह भरा विश्वास जगाकर जीयें सुख सम्मान से।।
देश उठेगा ।।ध्रु०।।
परावलम्बी देश जगत में, कभी न यश पा सकता है।

मृग तृष्णा में मत भटको, छीना सब कुछ जा सकता है।।
मायावी संसार चक्र में कदम बढ़ाओ ध्यान से।
अपने साधन नहीं बढ़ेंगे औरों के गुणगान से.....।।1।।
इसी देश में आदिकाल से अन्न, रत्न, भण्डार रहा।
सारे जग को दृष्टि देता, परम ज्ञान आगार रहा।।
आलोकित अपने वैभव से, अपने ही विज्ञान से।
विविध विधाएँ फैली भू पर अपने हिन्दुस्तान से.....।।2।।
अथक किया था श्रम अनगिन जीवन अर्पित निर्माण में।
मर्यादित उपभोग हमारा, पवित्रता हर प्राण में।।
परिपूरक परिपूरण सृष्टि, चलती ईश विधान से।
अपनी नव रचनाएँ होंगी, अपनी ही पहचान से.....।।3।।
आज देश की प्रज्ञा भटकी, अपनों से हम टूट रहे।
क्षुद्र भावना स्वार्थ जगा है, श्रेष्ठ तत्व सब छूट रहे।।
धारा 'स्व' की पुष्ट करेंगे समरस अमृत पान से।
कर संकल्प गरज कर बोले, भारत स्वाभिमान से.....।।4।।
केवल सुविधा अधिकारों की भाषा अब हम नहीं कहें।
हों कर्त्तव्य परायण सारे, अवसर सबको सुलभ रहें।।
माँ धरती को मुक्त करेंगे, दुःख दुविधा अपमान से।
जय जय अम्बर में गूंजेगा सभी दिशा उत्थान से.....।।5।।
देश विघातक षड्यन्त्रों के जाल बिछे हैं सावधान।
इस माटी को प्रेम करे जो, बस उनको ही अपना मान।।
कोई ऊपर नहीं रहेगा, भारत के संविधान से।
देश द्रोहियों को कुचलेंगे, देश भक्त की शान से.....।।6।।
देश उठेगा अपने पैरों निज गौरव के भान से।
स्नेह भरा विश्वास जगाकर जीयें सुख सम्मान से।।

गौरवशाली परम्परा

आदिकाल से अखिल विश्व को, देती जीवन यही धरा।
गौरवशाली परम्परा....
जीवन की आदर्श चिन्तना, परिपूरण परिपक्व विचार
कालातीत है दर्शन अपना, आत्मवत् सब सृष्टि निहार
सारा जग परिवार हमारा, पूज्या माता वसुन्धरा
गौरवशाली परम्परा.... ।।1।।
परमेश्वर के रूप अनेकों, अपने अपने मार्ग विशेष
श्रद्धा भक्ति अक्षय निष्ठा, नहीं किसी से राग न द्वेष

विविध पंथ वैशिष्ट्य सुवासित, एक सत्य का भाव भरा
गौरवशाली परम्परा.... ।।2।।
शील सत्य संयम मर्यादा, शुद्ध विशुद्ध रहा व्यवहार
करुणा प्रेम सहज सा छलका, सेवा तप ही जीवन सार
अमर तत्व के अमर पुजारी, विष पीकर भी नहीं मरा
गौरवशाली परम्परा.... ।।3।।
सघन ध्यान एकाग्र ज्योति से, किये गहनतम अनुसंधान
कला शिल्प संगीत रसायन, गणित अणु आयुर्विज्ञान
सभी विधाएँ आलोकित कर, महिमामय भूलोक वरा
गौरवशाली परम्परा.... ।।4।।
शौर्य पराक्रम अतुल तेज से, वीरोचित आया भूडोल
आयुध सज्जित अगणित योद्धा, नेत्र तीसरा फिर से खोल
शीश कटा पर देह लड़ी थी, स्वयं काल भी यहीं डरा
गौरवशाली परम्परा.... ।।5।।
आत्म चेतना नव–आभा ले, फिर से भारत राष्ट्र खड़ा
विराट् शक्ति प्रगटे गरजे, दुष्ट दलन हो कदम कड़ा
तुमुल घोष जयनाद करेगा, अपनाओ स्वधर्म जरा
गौरवशाली परम्परा.... ।।6।।

•••

शब्दार्थ

परावलम्बी–दूसरों पर आश्रित/ आगार–भंडार/ आलोकित–प्रकाशित/ क्षुद्र–छोटा, तुच्छ/ कालातीत–काल से परे/ सुवासित–सुगंधित/ आयुध–अस्त्र–शस्त्र/ तुमुल–उच्च स्वर में।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'शील' का शाब्दिक अर्थ है –
   (क) ज्ञान (ख) गुण
   (ग) स्वभाव (घ) चरित्र ( )
2. मर्यादित का विलोम शब्द है –
   (क) संयमित (ख) स्वतंत्र
   (ग) उच्छृंखल (घ) परतंत्र ( )

   उत्तरमाला – (1) घ (2) ग

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. किस प्रकार का देश यश प्राप्त नहीं कर सकता ?
2. हमारा उपभोग किस प्रकार का था ?
3. कवि ने किस प्रकार के लोगों को अपना मानने को कहा है ?

4. ''विष पीकर भी नहीं मरा'' पंक्ति में किस पौराणिक घटना की ओर संकेत किया गया है?
5. गहनतम अनुसंधान के लिए क्या आवश्यक है ?

लघूत्तरात्मक

1. प्राचीन भारत का निर्माण किस प्रकार के पुरुषार्थ से संभव हुआ ?
2. 'ईश विधान से संचालित सृष्टि' से क्या आशय है ?
3. ''अपने–अपने मार्ग विशेष'' में भारत की कौनसी परंपरा का बोध होता है ?
4. 'कालातीत दर्शन' से क्या आशय है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
5. 'नेत्र तीसरा फिर से खोल' पंक्ति के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'अपनी नव रचनाएँ होंगी, अपनी ही पहचान से।' पंक्ति के माध्यम से भारत की समृद्धि के रहस्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'मायावी संसार चक्र में, कदम बढ़ाओ ध्यान से' पंक्ति के माध्यम से कवि का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. अधिकार और कर्तव्यों के समन्वय पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. 'गौरवशाली परम्परा' गीत में भारत की किन–किन परंपराओं का उल्लेख हुआ है ? विस्तार से बताइए।

•••

यह भी जानें

योजक चिह्न (हाइफन –)

(क) योजक चिह्न (हाइफन) का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है।

(ख) द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए। जैसे – राम–लक्ष्मण, शिव–पार्वती, चाल–चलन, हँसी–मज़ाक, लेन–देन, पढ़ना–लिखना, खाना–पीना, खेलना–कूदना आदि।

(ग) सा, से, सी आदि से पूर्व हाइफन रखा जाए। जैसे – तुम–सा, चाकू–से तीखे।

(घ) तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं। जैसे – भू–तत्व। सामान्यतः तत्पुरुष समास में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे – रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

(ङ) इसी तरह यदि 'अ–नख' (बिना नख का) समस्त पद में हाइफन न लगाया जाए तो उसे 'अनख' पढ़े जाने से 'क्रोध' का अर्थ भी निकल सकता है। अ–नति (नम्रता का अभाव), अनति (थोड़ा), अ–परस (जिसे किसी ने न छुआ हो), अपसर (एक चर्म रोग), भू–तत्व (पृथ्वी तत्व), भूतत्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न–भिन्न शब्द हैं।

(च) कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे – द्वि–अक्षर न कि द्व्यक्षर; द्वि–अर्थक न कि द्व्यर्थक, त्रि–अक्षर न कि त्र्यक्षर आदि।

•••

10. काल–चक्र

• विद्यानिवास मिश्र

लेखक परिचय

हिंदी की ललित निबंधों की परंपरा को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाले कुशल शिल्पी पंडित विद्यानिवास मिश्र का जन्म 28 जनवरी, सन् 1926 में पकडडीहा, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। 1945 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं डाक्टरेट की उपाधि लेने के बाद विद्यानिवास मिश्र ने अनेक वर्षों तक आगरा, गोरखपुर, कैलिफोर्निया और वाशिंगटन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। वे देश के प्रतिष्ठित 'संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय' एवं 'काशी विद्यापीठ' के कुलपति भी रहे। इसके बाद अनेक वर्षों तक वे आकाशवाणी और उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग में कार्यरत रहे।

विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों की शुरूआत सन् 1956 से होती है परंतु आपका पहला निबंध संग्रह 1953 में 'छितवन की छांह' प्रकाश में आया। उन्होंने हिंदी जगत को ललित निबंध परंपरा से अवगत कराया। 'तुम चन्दन हम पानी' शीर्षक से जो निबंध 1957 में प्रकाशित हुए, उनमें संस्कृत साहित्य के संदर्भ का प्रयोग अधिक हो गया और पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण दब गया, जो आपकी पहली दो रचनाओं में मिलता था। तीसरे निबंध संग्रह 'आँगन का पंछी और बनजारा मन' में परिवर्तन आया। हिंदी साहित्य के सर्जक विद्यानिवास मिश्र ने साहित्य की ललित निबंध की विधा को नए आयाम दिए। हिंदी में ललित निबंध की विधा की शुरूआत प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने की थी, किंतु इसे ललित निबंधों का पूर्वाभास कहना ही उचित होगा। ललित निबंध की विधा के लोकप्रिय नामों की बात करें तो हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय आदि चर्चित नाम रहे।

विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में जीवन दर्शन, संस्कृति, परंपरा और प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का तालमेल मिलता है। 'हिन्दी की शब्द संपदा', 'हिन्दी और हम', 'हिन्दीमय जीवन और प्रौढ़ों का शब्द संसार' जैसी उनकी पुस्तकों ने हिंदी की सम्प्रेषणीयता के दायरे को विस्तृत किया। तुलसीदास और सूरदास समेत भारतेंदु हरिश्चंद्र, अज्ञेय, कबीर, रसखान, रैदास, रहीम और राहुल सांकृत्यायन की रचनाओं को संपादित कर उन्होंने हिंदी के साहित्य को विपुलता प्रदान की। विद्यानिवास मिश्र को भारत सरकार ने 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' से भी सम्मानित किया। इन्हें राज्यसभा का सदस्य भी मनोनीत किया गया।

पाठ–परिचय

पं. विद्यानिवास मिश्र ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की ललित, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सृजनात्मक परंपरा को आधुनिक विस्तार दिया है। इनमें लोक संवेदना और लोक हृदय की पकड़ बड़ी मर्मस्पर्शी है। पश्चिमी संस्कृति का नकली अनुकरण और आज के मानव का खोखलापन मिश्र जी के निबंधों में दर्द बनकर उभरता है।

हिंदी के मूर्धन्य विद्वान, साहित्यकार श्री विद्यानिवास मिश्र की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दी शब्द सम्पदा' से लिया गया यह पाठ हमें अनेक अर्थों में भारतीय परिवेश से जोड़ता है। पाश्चात्य प्रभाव से हम शनैः शनैः अपने दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले बहुप्रचलित शब्द, शब्द समूह, वाक्यों, मुहावरों को भी विस्तृत करते जा रहे हैं, अर्थात् हम अपने अतीत, अपनी परंपराओं को संजोए ज्ञान से कटते जा रहे हैं। 'हिन्दी शब्द सम्पदा' में मिश्र जी ने ऐसे ही शब्दों को मानो पुनर्जीवन प्रदान किया है और इतने सुंदर, प्रभावी ढंग से कि वह अत्यंत रोचक बन पड़ा है। 'काल–चक्र' में प्रयुक्त शब्द प्रायः अभी भी ग्रामों में प्रचलित हैं और दैनिक जीवन में प्रयोग होते हैं। भारतीय काल गणना संसार में प्रचलित अन्य सभी काल गणनाओं की तुलना में सर्वाधिक शुद्ध, वैज्ञानिक मानी जाती है। नगरीय क्षेत्रों में चैत्र, वैशाख, मलमास, दुपहरी, तिपहरी आदि शब्द कठिन लगते हैं किंतु आज भी अनपढ़ ग्रामीण इनका अर्थ जानता है और उसके अनुसार ही अपना जीवन क्रम निर्धारण करता है। 'काल–चक्र' के माध्यम से ओर जहाँ हमारी हिंदी शब्द संपदा का विकास होगा वहीं काल–गणना के भारतीय वैज्ञानिक स्वरूप से भी हमारा परिचय होगा।

मूल पाठ

काल मृत्यु है, पर काल–चक्र जीवन है। हमारे चिंतन में ठहरे हुए काल की इसीलिए बड़ी उपेक्षा है, पर गतिशील काल–चक्र की बड़ी महिमा है। संवत्सर को यज्ञरूप कहा गया है, जीवन को संवत्सर के रूप में देखा गया है, वसंत को यौवन के रूप में और शिशिर को बुढ़ापे के रूप में देखा गया है। हमारा ऐतिहासिक बोध जितना ही सपाट है, प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक ये विभाजन जितने ही कुंठित हैं, उतने ही काल–चक्र के सूक्ष्म विभाजन धारदार।

भारतीय काल–गणना ब्रह्मा के पराद्र्ध से शुरू होती है क्योंकि सृष्टि का चक्र ब्रह्मा का अहोरात्र माना जाता है, फिर कल्प आता है, १४ मन्वन्तर का एक कल्प होता है। एक मन्वन्तर ७१ चौकड़ी (युग चतुष्टयी) का होता है और उसमें इंद्र, मनु, सप्तर्षि ये सभी क्रम में बदलते रहते हैं। एक चौकड़ी का अर्थ है पूरा कृतयुग (सत्वयुग, सतयुग) त्रेतायुग, द्वापर और कलि युग का चक्कर, हर युग के चार चरण होते हैं। वर्ष–गणना भी ६0 वर्षों के चक्कर के आधार पर होती है, प्रत्येक संवत्सर के प्रवेश का दिन होता है। वैसे सन् संवत् भी चलते हैं, विक्रम संवत्, शक या साके (जिसे राष्ट्रीय संवत् भी माना गया है) ईस्वी सन्, हिजरी और फसली प्रचलित है, हिंदुओं के धार्मिक कार्यों में विक्रम और शक का ही व्यवहार है। मास–गणना भी चंद्रमास और सौरमास दो आधारों पर होती है, चंद्रमास कृष्णपक्ष (बदी) की प्रतिप्रदा (पडिवा) से शुरू होती है और शुक्लपक्ष (सुदि < शुक्ल दिन, बदि < बहुल दिन) की पूर्णिमा (पूनों) तक गिना जाता है, पहले यह मास शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रारंभ होकर कृष्णपक्ष की अमावस्या (अमावस, मावस) तक गिना जाता था। इसीलिए पूर्णिमा को १५ तिथि और अमावस्या को ३0 वीं तिथि कहा जाता है। चंद्रमा के ही संचार के अनुसार तिथि गणना होती है, वैसे दिन एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक ही होता है, जो तिथि सूर्योदय के समय रहती है उसे उदय तिथि कहते हैं, जो तिथि एक सूर्योदय के बाद शुरू होकर दूसरे सूर्योदय के पहले ही समाप्त हो जाती है, उसे क्षय तिथि कहते हैं और जो तिथि

संध्याकाल में रहती है उसे प्रदोषा या प्रदोषाव्यापिनी, जो निशीथकाल में रहती है, उसे निशीथव्यापिनी कहा जाता है। तिथि का महत्त्व व्रत–उपवास के लिए है। व्रत की महत्त्वपूर्ण तिथियाँ एकादशी, त्रयोदशी (प्रदोषव्रत, तेरस) चतुर्थी (चौथ), तृतीया (तीज), पंचमी (पचइ), षष्ठी (छट्ट) और पूर्णिमा (पूनों) है। कुछ एकादशियाँ प्रसिद्ध हैं, देवोत्थान (डिठवन) कार्तिक सुदि की एकादशी), भीमसेनी (जेठ सुदि की) हरिशयनी (अषाढ़ सुदि की), कुछ चौथ प्रसिद्ध है। गणेश चतुर्थी (भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी) कुछ पंचमी भी जैसे बसंत पंचमी, नागपंचमी (सावन सुदि ५), पूर्णिमा कार्तिक पूस और वैसाख की अमावस माघ की स्नान के पर्व के रूप में प्रसिद्ध हैं।

सौरमास सूर्य के राशि–संक्रमण के आधार पर है। मेष संक्रांति से वर्ष शुरू होता है। उस दिन सतु आनि का पर्व पूरब में होता है, वर्षारम्भ पंजाब और बंगाल में मनाया जाता है। मकर की सक्रान्ति से उत्तरायण शुरू होता है। उन दिन पोंगल और खिचड़ी के पर्व होते हैं। सौरमास के साथ आने के लिए ३५ चन्द्रमासों के बाद लगभग एक अधिमास (मलमास, लोंद आता है, उस वर्ष को अधिकवर्ष या लोंद का साल कहते हैं।)

दिन चौबीस घंटों या ६0 घटियों का होता है। ३ घण्टे या साढ़े सात घड़ियों का (साधारण व्यवहार में ८ घटी का) एक प्रहर–पहर होता है, उस समय गजर बजता था इसलिए उतने समय को गजर भी कहते हैं, घंटे का हिसाब अंग्रेजी है अर्थात् १२ बजे रात से, पर घड़ी का सूर्योदय से है। गाँवों में समय का विभाजन बड़ा बारीक है। सूर्योदय के लगभग एक डेढ़ घण्टे पहले से आकाश की गतिविधि देखकर समय का विभाजन किया गया है; सबसे पहले सुकवा (शुक्रतारा) उगता है, वह समय सुकवाउगानी कहा जाता है, उसके बाद भिनसार हो जाता है, अभी मुँह–अँधेरा बना रहता है, चिड़ियाँ बोलने लगती हैं, फिर पूरब की ओर कुछ उजास दिखने लगती है, और तब भोर हो जाती है, प्रभात या उजेला हो जाता है, इसके बाद लाही लगती है (लाली की आभा दीखती है), सवेरा हुआ, प्रत्यूषवेला आ गयी, तब पौ फटती है, सुबह हो जाती है, सूर्योदय हो जाता है, सवेरे से पहले तड़के सुबह कहा जाता है और सूर्योदय से पूर्व की वेला को ब्रह्मवेला या उषःकाल कहा जाता है। सूर्योदय (दिन उगने) के बाद जब सूर्य ऊपर चढ़ जाता है तो दिन चढ़ानी वेला कहते हैं और एक पहर बीतने पर दुपहरी लग जाती है। बारह बजते–बजते या जब सूर्य ठीक ऊपर आ जाता है तो दुपहरी खड़ी हो जाती है, मध्याह्न, पूर्वाह्न और अपराह्न ये शब्द ए.एम. और पी.एम. के कारण बहुत प्रचलित होने लगे हैं पर ६ बजे शाम ही कहना हिन्दी में उचित मालूम होता है। दुपहरी ढलते ही तिजहरी (तिपहरी, सिपहरी) शुरू हो जाती है। दिन का चौथा पहर दिनढलानी वेला है और साँझ या सँझा या संध्या की भी प्रक्रिया कम लंबी नहीं है। गोधूलि लगती है, फिर साँझ को गेरूई लाली छा जाती है, वेला डूबने का समय आ जाता है, वेला झुकुमुक करते–करते डूब जाती है, सूर्य छिप जाता है और झुटपुटा होने लगता है, धीरे–धीरे ध्वांत या धुंध फैलने लगती है और दीपावली की जून आ जाती है, इसके बाद एकाध तारा दीखता है और एक घड़ी रात हो जाती है। रात क्रमशः गहराती चली जाती है; दूसरे शब्दों में रात भीगने लगती है। पहले पहर के बाद अमूमन गाँवों में सोता पड़ जाता है। सूतापड़ानी के जून के बाद दीये गुल होने लगते हैं, रात साँय–साँय करने लगती है, एकाध लोग चौपाल पर अलाव तापने जमे रहते हैं या प्रधान जी के दरवाजे पर लालटेन भुकभुकाती रहती है। आधी रात या निशीथ

वेला का बोध तंत्रमंत्र और चोरी जगाने वालों का ही अधिक होता है। हाँ, चंद्रोदय का समय व्रत–उपवास वालों के लिए महत्त्वपूर्ण है। समुद्र के किनारे के मछुओं के लिए भी। पर सामान्य जीवन में लगभग ६ बजे रात के बाद रात गिर जाती है तो लोगों के व्यापार समाप्त हो जाते हैं।

घंटे का विभाजन मिनट सैकंड में और घड़ी या दण्ड का पल–विपल में जैसे सूक्ष्म समय–विभाजन की मूर्त संज्ञाएँ भी कम नहीं है। पलक भाँजते, चुटकी बजाते, लहमें भर में, क्षण भर में, ये सभी निमिष, पल के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। चार घड़ी का मुहूर्त चौघड़िया कहा जाता है। अच्छा दिन सुदिन कहा जाता है, विवाह आदि उत्सव के दिन शुभ दिन या सुदिन ही कहे जाते हैं, मृत्यु या निधन की तिथि पुण्यतिथि कही जाती है। अच्छा मुहूर्त हो तो साइत का दिन और यदि यात्रा ठीक न उतरी या कार्य सफल न हुआ तो वह दिन कुसाइत हो जाता है।

ऋतुचक्र का महत्त्व भी कम नहीं है। वैसे वर्ष का पहला चौमासा गर्मी, दूसरा चौमासा वर्षा या पावस कहा जाता है। उसी को कभी–कभी चौमासा या चातुर्मास भी कहा जाता है। अंतिम चौमासा जाड़ा या शीतकाल कहा जाता है, पर वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर ये छः ऋतुनाम भी प्रचलित हैं। खेती के काम में इनसे भी अधिक प्रचलित है सूर्यनक्षत्रों के नाम। जेठ में सूर्य का रोहिन नक्षत्र में संचार होता है तभी से खेतों का कार्य शुरू हो जाता है। रोहिन की वर्षा का महत्त्व आम और धान दोनों के लिए विशेष है। इसके बाद मृग में सूर्य का तवना मनाया जाता है, पर आर्द्रा में वर्षा अत्यावश्यक मानी जाती है, एक नक्षत्र की अवधि १३ या १४ दिन होती है। आर्द्रा के बाद पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त, चित्रा और स्वाति ये सभी कृषि के विभिन्न कार्यों के लिए महत्त्व रखते हैं और इसलिए ये नाम कृषि जीवन में कुछ विकार के साथ प्रचलित हैं जैसे आर्द्रा, पुनरवसु, पुख्य, असलेषा, मघा, पुरवा और हथिया। महीनों में (चेती फसल कटने के कारण), जेठ असाढ़ी (खेत की तैयारी और बाग के लिए), भदवारा (वर्षा के लिए) कुआरी और कतिका (नयी फसल की तैयारी के लिए) प्रसिद्ध है। जाड़े और तपन के सापेक्ष बोध भी प्रखर हैं। फागुन का जाड़ा गुलाबी जाड़ा है, गर्मी सुहावनी है, चैत्र में चिनचिनाहट शुरू होती है, वैसाख में तपन बढ़ जाती है और लपट पड़ने लगती है। जेठ में सूर्य वृष के हो जाते हैं, तब ताप चरम सीमा को पहुँच जाता है, रातें भी तँवक उठती हैं और आषाढ़ से बारिश के बाद उमस होने लगती है। मेह पड़ने के पहले बतास के गुम होने पर ये उमस दुस्सह हो जाती है। कुआर में घाम बड़ा तीखा और विषगर्भ हो जाता है। कार्तिक से रात सियराने लगती है, पूस और माघ में चिल्ला जाड़ा पड़ता है और ठिठुरन होने लगती है, पानी जमता सा लगता है और नदी का जल भी काटता सा लगता है। हवा छेदने लगती है। रातें बड़ी हो जाती हैं। दिन–रात बराबर वसन्त और शरत सम्पात के दिन होते हैं। रात का उत्कर्ष दक्षिणायन के अन्त तक और दिन का उत्तरायण के अन्त तक होता है।

काल–चक्र निरंतर घूम रहा है और हमारा मनुष्य इस कालचक्र की यात्रा से अपने को समजस रख के चल रहा है। वह इस चक्र को निरंतर जी रहा है, वह अँधेरी रात से भय नहीं खाता, क्योंकि उसके भीतर एक विश्वास है – पुनः सवेरा एक बार फेरा है जी का (निराला की अन्तिम काव्य–पंक्ति)।

•••

शब्दार्थ

गजर–घंटा / निशीथ–रात / हरिशयनी–देवशयनी / पूस–पौष / मध्याह्न–दिन का मध्य, दोपहर / पूर्वाह्न–मध्य से पहले का दिन / अपराह्न–मध्य के बाद का दिन / गोधूलि–सायंकाल / पुख्य–पुष्य नक्षत्र / बतास–वायु / कुआर–आश्विन माह।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'काल–चक्र' से आशय है –

   (क) समय का चक्र या पहिया (ख) काल का चक्कर

   (ग) मृत्यु का झमेला (घ) हेरफेर करना ( )

2. संवत्सर का अर्थ है –

   (क) नववर्ष (ख) काल

   (ग) घड़ी (घ) हवन सामग्री ( )

उत्तरमाला – (1) क (2) क

अतिलघूत्तरात्मक

1. निशीथ किसे कहते हैं ?
2. अहोरात्र शब्द का अर्थ बताइए।
3. जेठ में सूर्य का किस नक्षत्र में संचार होता है ?
4. गणेश चतुर्थी किस तिथि को मनाते हैं ?
5. फागुन का जाड़ा कैसा होता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चंद्रमास से क्या तात्पर्य है ?
2. मलमास का क्या अर्थ है ?
3. 'क्षय तिथि' कब कहलाती है ?
4. प्रदोष कब माना जाता है ?
5. षड्–ऋतुओं के नाम लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. वसंत को यौवन के रूप में और शिशिर को बुढ़ापे के रूप में क्यों माना गया है ?
2. सौरमास पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. आकाश की गतिविधि देखकर समय का विभाजन किस प्रकार किया गया है ?
4. खेती के काम किन–किन नक्षत्रों में होते हैं ?

•••

यह भी जानें

अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिक स्वर का नासिक्य विकार। हिंदी में ये दोनों अर्थभेदक भी हैं। अतः हिंदी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे।

टिप्पणी – उच्चारण करते समय जब प्रश्वास केवल नासिका से बाहर आए तब अनुस्वार का प्रयोग होगा तथा जब उच्चारण करते समय प्रश्वास नासिका और मुख दोनों से बाहर निकले तब अनुनासिकता चिह्न (ँ) का प्रयोग होगा। जैसे – हंस / हँस।

•••

11. पुरस्कार

• जयशंकर 'प्रसाद'

लेखक–परिचय

जयशंकर 'प्रसाद' (1890–1937) का जन्म काशी में हुआ था। ये 'सुंघनी साहू' के नाम से प्रसिद्ध थे। 1909 ई० में 'इन्दु' के सम्पादन से इनकी साहित्य यात्रा आरंभ हुई जो कामायनी तक अनवरत चलती रही। इन्होंने नाटक, निबंध, कहानियाँ, उपन्यास, काव्य, गद्य काव्य और चंपू आदि तत्कालीन सभी विधाओं में सिद्ध हस्त से लिखा है। वे भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के गूढ़ तत्वों के व्याख्याता, मानव चरित्र के विविध गुप्त एवं जटिल पक्षों के उद्घाटक थे। आधुनिक भारतीय समाज के खोखलेपन का निदर्शन, इतिहास के अवशेषों में से मार्मिक एवं प्रेरक प्रसंगों का चयन, राष्ट्रीय गौरव की प्रतिष्ठा, नारी के व्यक्तित्व में ममता, श्रद्धा, त्याग, शक्ति और शौर्य का अवतरण, प्रकृति और मानव के संघर्ष एवं सहयोग का धूप–छाँही अंकन, नियति के विधान और मानवीय प्रयत्नों दोनों के सहयोग से मानव के उत्थान–पतन का चित्रण इनकी रचनाओं में दिखाई देता है। प्रसिद्ध रचनाएँ – चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु, आदि (नाटक), तितली, कंकाल और इरावती (अपूर्ण) (उपन्यास), कामायनी (महाकाव्य), देवरथ (कहानी संग्रह) आदि प्रसिद्ध हैं।

पाठ–परिचय

'पुरस्कार' कहानी इनके पाँचवें कथा संग्रह जिसका प्रकाशन 1936 ई० में हुआ से ली गई है। इस कहानी के चरित्रों में भाव सौंदर्य, अंतर्द्वंद्व तथा मनोवैज्ञानिक चढ़ाव–उतार दर्शनीय है। कोसल की राज्य परंपरा के निमित्त अपना खेत देकर भी प्रतिदान स्वीकार न करने वाली 'मधूलिका' मगध के राजकुमार अरुण के सपनों में खोकर कोसल के दुर्ग पर आक्रमण में सहयोगिनी बनती है। लेखक ने उसके हृदय में राष्ट्रप्रेम और स्वप्रेम के संघर्ष की कहानी को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

•••

मूल पाठ

आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले–काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव–दुंदुभि का गंभीर घोष। प्राचीन के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा था– देखने लगा, महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर–तोरण से जय–घोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुंड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम किरणों से अनुरंजित नन्हीं–नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल–सूचना से जनता ने हर्ष ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्र–पल्लवों से सुशोभित मंगल–कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित–वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुये सुंदर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोसल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ा – उस दिन इन्द्र–पूजन की धूम–धाम होती; गोठ होती। नगर–निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनंद मनाते। प्रति वर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से संपन्न होता, दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठ कर बड़े कुतूहल से वह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिए कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिये चुना गया था। इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुंदरी थी। कौशेय–वसन उसके शरीर पर इधर–उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी। वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे, सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किंतु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता न दिखाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे–विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक–कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौंदर्य! कितनी सरल चितवन।

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किंतु साथ ही उसमें की स्वर्ण मुद्राओं को महाराज पर न्यौछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्त्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी जरा चढ़ी ही थी। मधूलिका ने सविनय कहा –

''देव! यह मेरे पितृ–पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।'' महाराज के बोलने के पहले वृद्ध मंत्री ने तीखे स्वर से कहा – ''अबोध! क्या कह रही है ? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है, फिर कोसल का यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना। ''राजकीय–रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है मंत्रिवर!

महाराज को भूमि–समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है, किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।''–मधूलिका उत्तेजित हो उठी।

महाराज के संकेत करने पर मंत्री ने कहा – ''देव! वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।'' महाराज चौंक उठे–''सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोसल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है ?''

''हाँ देव!'' सविनय मंत्री ने कहा।

''इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मंत्रिवर ?'' महाराज ने पूछा।

''देव–नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिये चुन कर नियमानुसार पुरस्कार स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यंत अनुग्रह पूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।''

महाराज को विचार–संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जय घोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने–अपने शिविरों में चले गये किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक–वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

\+ + + +

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ – वह विश्राम–भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसे गुलाबी खिल रही थी, वही रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुँडेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते–देखते नगर–तोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे; अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर–सा निकल गया। सिंधु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता हुआ अरुण उसी मधूक–वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न–मुद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी–लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पंद। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठी–उसने अरुण से प्रश्न किया –छिः कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात् करने वाले धृष्ट, तुम कौन ?'' मधूलिका की आँख खुल पड़ी। उसने देखा एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। ''भद्रे! तुम्हीं न कल उत्सव की संचालिका रही हो?''

''उत्सव! हाँ, उत्सव ही तो था।''

''कल उस सम्मान.....''

''क्या आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्र! आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट न रहने देंगे ?''

''मेरा हृदय उस छवि का भक्त बन गया है देवि!''

''मेरे इस अभिनय का–मेरी विडंबना का। आह! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।''

''सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ–मेरे हृदय की भावना अवगुंठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी.....''

''राजकुमार मैं कृषक बालिका हूँ! आप नंदन–बिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है–मैं दुःख से विकल हूँ, मेरा उपहास न करो।''

''मैं कोसल नरेश से तुम्हारी भूमि दिलवा दूँगा।''

''नहीं वह कोसल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती–चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।''

''तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?''

''यह रहस्य मानव–हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार नियमों से यदि मानव–हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक–बालिका का अपमान करने न आता।'' मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्न किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई। उसके हृदय में टीस–सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

\+ \+ \+ \+

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नहीं लिया। वह–दूसरे खेतों में काम करती थी और चौथे पहर रूखी–सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक–वृक्ष के नीचे छोटी–सी पर्ण–कुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वह आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही उसकी साँसों को बिताने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कांति थी। आस–पास के कृषक उसका आदर करते थे। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

\+ \+ \+ \+

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश जिसमें बिजली की दौड़ धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था, ओढ़ने की कमी थी। यह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी। जीवन के सामंजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परंतु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती–बढ़ती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती बात स्मरण हुई –''दो, नहीं तीन वर्ष हुए होंगे इसी मधूक के नीचे, प्रभात में–तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?''

वह अपने हृदय से पूछने लगी–उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक–सी वह पूछने लगी–''क्या कहा था ?'' दुःख–दग्ध हृदय उन स्वप्न–सी बातों का स्मरण रख सकता

और स्मरण ही होता तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री, विडंबना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दरिद्रता की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद–माला के वैभव का काल्पनिक चित्र–उन सूखे डंठलों की रंध्रों से, नभ में–बिजली के आलोक में नाचता–हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की संध्या में जुगुनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका अभी वह निकल गया, मन ही मन कह रही थी। वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की संभावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर शब्द हुआ –

''कौन है यहाँ ? पथिक को आश्रय चाहिए।''

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है और सहसा वह चिल्ला उठी–''राजकुमार!''

''मधूलिका!'' आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई, ''इतने दिनों के बाद आज फिर।''

अरुण ने कहा–''कितना समझाया मैंने, परंतु.....''

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा –''और आज आपकी यह क्या दशा है ?''

सिर झुका कर अरुण ने कहा –''मगध का विद्रोही निर्वासित कोसल में जीविका खोजने आया हूँ।''

मधूलिका उस अंधकार में हँस पड़ी–''मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक–बालिका, यह भी एक विडंबना है तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।''

\+ + + +

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा–''जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है ?''

''मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन–मरण के साथी हैं। भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता ? और करता भी क्या ?''

''क्यों ? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम.....।''

''भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ, निराश क्यों हो जाऊँ ?'' अरुण के शब्दों कम्पन्न था, वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।

''नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे ? कोई ढंग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनंद ले लूँ।''

''कल्पना का आनंद नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के संमान में सिंहासन पर बिठाऊँगा। तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।''

एक क्षण में सरला मधूलिका के मन में प्रमाद का अंधड़ बहने लगा–द्वंद्व मच गया। उसने सहसा कहा–''आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार!''

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला–''तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो ?''

युवती का वक्षस्थल फूल उठा। वह हाँ भी नहीं कह सकी, न भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के सामने उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरंत बोल उठा–''तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से प्रण लगाकर मैं तुम्हें इस कोसल के सिंहासन पर बिठा दूँ मधूलिका। अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी ?'' मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी, नहीं–किन्तु उसके मुँह से निकला, ''क्या?''

''सत्य मधूलिका, कोसल–नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिंतित हैं यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण–सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोसल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गए हैं।''

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगी। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा–''तुम बोलती नहीं हो ?''

''जो कहोगे वही करूँगी'' मंत्रमुग्ध–सी मधूलिका ने कहा।

\+ + + +

स्वर्णमंच पर कोसल–नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किए हैं। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आंदोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे–धीरे संचालित हो रहे हैं। तांबूल–वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा–''जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।''

आँखे खोलते हुए महाराज ने कहा –''स्त्री! प्रार्थना करने आई है ?आने दो।''

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आयी। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा–''तुम्हें कहीं देखा है!''

''तीन बरस हुए देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।''

''ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताए, आज उसका मूल्य माँगने आई हो क्यों ? अच्छा–अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!''

''नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।''

''मूर्ख! फिर क्या चाहिए ?''

''उतनी ही भूमि। दुर्ग के दक्षिण नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा; भूमि को समतल भी बनाना होगा।''

महाराज ने कहा–''कृषक बालिके! वह बड़ी उबड़–खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।''

''तो फिर निराश लौट जाऊँ।''

''सिंहमित्र की कन्या! मैं क्या करूँ ? तुम्हारी यह प्रार्थना.....।''

''देव! जैसी आज्ञा हो।''

''जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञा–पत्र देने का आदेश करता हूँ।''

''जय हो देव!'' कह कर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आई।

\+ + + +

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जंगल है। आज वहाँ मनुष्यों का पद–संचार से जंगल की शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर–उधर घूमते थे। झाड़ियों को काट कर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा खेत बन रहा था। किसी को इसकी चिंता न थी।

एक घने कुंज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अंतिम किरणें झुरमुट से घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं। अरुण ने कहा–''चार पहर और विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण कलेवर कोसल–राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिका!''

''भयानक! अरुण तुम्हारा साहस देख कर मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम.....''

''रात के तीसरे पहर मेरी विजय–यात्रा होगी मधूलिके!''

''तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?''

''अवश्य! तुम अपनी झोपड़ी में यह रात बिताओ, प्रभात से तो राजमंदिर ही तुम्हारा लीला–निकेतन बनेगा।''

मधूलिका प्रसन्न थी, किंतु अरुण के लिए उसकी कल्याण कामना सशंक थी। वह कभी–कभी उद्विग्न–सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता।

सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा–''अच्छा, अंधकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राणपन से इस अभियान के प्रारंभिक कार्यों को अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए। इसलिए रात्रि भर के लिए विदा।''

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़ने वाले अंधकार में, वह अपनी झोपड़ी की ओर चली।

\+ + + +

पथ अंधकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गयी। जितनी सुख–कल्पना थी, वह जैसे अंधकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ; यदि वह सफल न हुआ तो! फिर सहसा सोचने लगी, वह क्यों सफल हो ? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय ? मगध कौसल का चिर शत्रु! ओह; उसकी विजय! कौसल–नरेश ने क्या कहा था–'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र कोसल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है ? नहीं, नहीं। मधूलिका! ''मधूलिका!'' जैसे उसके पिता उस अंधकार में पुकार रहे थे, वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गयी।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़–बुन में विक्षिप्त–सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती है। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे–आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसक बाएँ हाथ में अश्व की वल्गा थी और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यंत धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परंतु मधूलिका बीच से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया, पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा –''कौन ?'' कोई उत्तर न मिला। तब दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा–तू कौन है स्त्री ? कोसल के सेनापति को शीघ्र उत्तर दे।''

रमणी जैसे विकारग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी–''बाँध लो मुझे, बाँध लो! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।''

सेनापति हँस पड़े और बोले–''पगली है।''

''पगली! नहीं यदि वही होता तो इतनी विचार–वेदना क्यों होती सेनापति! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।''

''क्या है! स्पष्ट कह।''

''श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिण नाले के पार से उनका आक्रमण होगा।''

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा–''तू क्या कह रही है ?''

''मैं सच कह रही हूँ, शीघ्रता करो।''

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे–धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

+ + + +

श्रावस्ती का दुर्ग कोसल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। विभिन्न राजवंशों ने उसके प्रांतों पर अधिकार जमा लिया है और अब वह कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोसल के अतीत की स्वर्ण गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे, जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग पर रुके। जब उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहिचाना, तब द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ पर से उतरे। उन्होंने कहा–''अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे ?

''सेनापति की जय हो! दो सौ।''

''उन्हें शीघ्र ही एकत्र करो, परन्तु बिना किसी शब्द के सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।''

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे सेनापति ने कहा –''जय हो! देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।''

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा–''सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों ? –क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिण नाले के समीप की भूमि इसे दे दी है। क्या उसी सम्बंध में तुम कहना चाहते हो ?''

''देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबंध किया। इस स्त्री ने मुझे पथ में यह संदेशा दिया है।''

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा–''मधूलिका! यह सत्य है ?''

''हाँ देव!''

राजा ने सेनापति से कहा –''सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।'' सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा –''सिंहमित्र की कन्या! तुमने एक बार फिर कोसल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा; तुम यहीं ठहरो। पहले उन आतताइयों का प्रबंध कर लूँ।''

+ + + +

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जय–घोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल, वृद्ध–नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा–मंडप दर्शकों से भर गया। बंदी अरुण को देखती ही जनता ने रोष से हुँकार की – ''वध करो!'' राजा ने सहमत होकर कहा –''प्राणदण्ड।'' मधूलिका बुलाई गई। वह पगली–सी आकर खड़ी हो गई। कोसल नरेश ने पूछा –''मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।'' वह चुप रही।

राजा ने कहा –''मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ।'' मधूलिका ने एक बार बंदी अरुण की ओर देखा। उसने कहा –''मुझे कुछ न चाहिए।'' अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा –''नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।''

''तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।'' कहती हुई वह बंदी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

•••

शब्दार्थ

प्राचीर–परकोटा, चहारदीवार/ उर्वरा–उपजाऊ/ शुण्ड–हाथी की सूँड/स्वस्त्ययन–मांगलिक कार्य/ खीलों–बताशे/ कौशेय–वसन –रेशमी वस्त्र/अलकों–बाल,केश/ शुभ्र–सफेद/ श्रमकणों–पसीने की बूँदें/ शिथिलता–थकान/ कृत्य–कार्य/ न्यौछावर –अर्पण/ ऊर्जस्वित–ऊर्जावान/निस्पन्द–निश्चेष्ट/ दृष्टिपात्–देखना/ अनुग्रह–कृपा/ रत्न किरीट–रत्नों का मुकुट/ निष्ठुर–कठोर/ पर्ण–कुटीर–पत्तों से बनी झोपड़ी/ जर्जर–जीर्ण–शीर्ण/ कपाट–किवाड़/ निस्तब्ध–शांत/ गह्वर–गुफा/ खड्ग–तलवार/ दस्युओं–डाकुओं/ दारुण–करुण/ श्रमजीवियों–श्रम करके जीने वाले/ अमात्य–मंत्री/ पद–संचार–चहलकदमी/ कोलाहल–जोर–जोर से आवाजें करना/ जीर्ण–पुराना, टूटा–फूटा/ निकेतन–गृह,घर/ विक्षिप्त–सी–पागलों–सी/ उल्काधारी–मशाल लिए हुए / प्रतिहारी–सेवक, रक्षक/आतताइयों–आतंकवादियों/आबाल–वृद्ध–बालक और वृद्ध

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मधूलिका का ''मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई।'' क्योंकि–
   (क) वह राजरानी बनने वाली है।
   (ख) कहीं चूक में राजकुमार असफल हो गया तो ?
   (ग) मैंने व्यक्तिगत सुख के लिए कोसल को खतरे में डालकर ठीक नहीं किया।
   (घ) इस रात्रि में कैसा भीषण चक्र होगा! मुझे भी साथ जाना चाहिए था। ( )
2. मधूलिका ने पुरस्कार स्वरूप राजा से क्या माँगा ?
   (क) स्वर्ण मुद्राएँ (ख) खेती की भूमि
   (ग) अरुण के साथ प्राणदण्ड (घ) अपने लिए पृथक दुर्ग ( )
   उत्तरमाला – (1) ग (2) ग

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।'' मधूलिका ने ऐसा क्यों कहा ?
2. ''मैं सच कह रही हूँ शीघ्रता करो'' यह किसने, कब और किससे कहा ?
3. मधूलिका ने कोसल पर क्या उपकार किया ?
4. अरुण कौन था ?
5. मधूलिका ने अपने लिए भूमि कहाँ माँगी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मधूलिका का परिचय दीजिए।

2. कोसल के उत्सव का परम्परागत नियम क्या था ?
3. 'मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी।' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. मधूलिका ने राजा से अपनी भूमि का मूल्य स्वीकार क्यों नहीं किया ?
5. मधूलिका के पिता कौन थे, उन्होंने क्या कार्य किया था ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मधूलिका की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
2. निर्वासित अरुण की दुर्ग पर अधिकार करने की क्या योजना थी ?
3. '' जीवन के सामंजस्य बनाए रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती–बढ़ती रहती है।'' उक्त पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।

•••

यह भी जानें

अनुस्वार (शिरोबिंदु ं)

(क) संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण (पंचमाक्षर) के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे– पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा, संत, संध्या, मंदिर, संपादक, संबंध आदि। (पङ्कज, गङ्गा, चञ्चल, कञ्जूस, कण्ठ, ठण्डा, सन्त, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध वाले रूप नहीं।)

(ख) यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे – वाङ्मय, अन्य, चिन्मय, उन्मुख आदि (वांमय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राह्य नहीं होंगे।)

(ग) पंचम वर्ण यदि द्वित्व रूप में (साथ–साथ) आए तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे – अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंन, संमेलन, संमति रूप ग्राह्य नहीं होंगे।)

(घ) संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे– अहं (अहम्), एवं (एवम्), परं (परम्), शिवं (शिवम्)।

•••

12. निक्की, रोजी और रानी

• महादेवी वर्मा

लेखिका परिचय

महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में फर्रूखाबाद में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा इंदौर में हुई। प्रयाग के क्रास्थवेट कॉलेज में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, हिंदी और संस्कृत में स्नातकोत्तर किया। ये महिला विद्यापीठ, प्रयाग की प्रधानाध्यापिका भी रहीं। इनकी रचनाओं में पाठक के हृदय को भाव–विभोर करने की अद्भुत क्षमता आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली यह लेखिका छायावादी काव्यधारा की प्रमुख कवयित्री हैं। रश्मि, नीहार, नीरजा, दीपशिखा, यामा, सांध्यगीत इनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं। इनके द्वारा गद्य साहित्य में निबंध, संस्मरण व रेखाचित्र की भी रचना की गई है। इनका गद्य साहित्य भावपूर्ण व रोचक है। 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'अतीत के चलचित्र' व 'मेरा परिवार' इनके प्रमुख संस्मरणात्मक गद्य संकलन हैं। 'पथ के साथी' में इन्होंने अपने सम्पर्क में आए महान साहित्यकारों के संस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखे हैं। 'मेरा परिवार' में इन्होंने अपने जीवन से संबंधित उन जीव–जंतुओं का वर्णन किया है जिन्हें इन्होंने अपने जीवन में पाला था। गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में प्रतिभाशाली महादेवी वर्मा का निधन सन् 1987 में हुआ।

पाठ परिचय

प्रस्तुत रचना में लेखिका ने अपने जीवन में आए, ऐसे तीन जीवों का वर्णन किया है, जो मानव समष्टि के सदस्य न होने पर भी, उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ने में समर्थ रहे हैं। इस रचना में उनका पशु–प्रेम भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

पशु प्रेम का इतना सटीक एवम् सरस वर्णन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। नकुल शिशु के प्रति सहानुभूति उनकी मानवता को दर्शाती है। साँप–नेवले की लड़ाई का भी मनोरंजक वर्णन है। पशु होते हुए भी निक्की, रोजी और रानी में घनिष्ठ मित्रता का भाव मैत्री की शिक्षा देता है। अपने पालतू पशुओं–जीवों के साथ घटी घटनाओं के माध्यम से, इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि पशु भी अत्यन्त समझदार होते हैं और विपत्ति में अपनों का साथ देते हैं। बाल्य काल में बच्चों को पशु–पक्षियों के बारे में जानने की अभिरुचि होती है, किन्तु धीरे–धीरे वह अधिकांश लोगों में विलुप्त हो जाती है। यह अध्याय हमें जीवों से प्रेम करने की भावना पैदा करता है और उनके संरक्षण के प्रति जागृति उत्पन्न करता है।

मूल पाठ

बाल्यकाल की स्मृतियों में अनुभूति की वैसी ही स्थिति रहती है, जैसी भीगे वस्त्र में जल की। वह प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता किन्तु वस्त्र के शीतल स्पर्श में उसकी उपस्थिति व्यक्त होती रहती है। इन स्मृतियों में और भी विचित्रता है। समय के माप से वे जितनी दूर होती जाती हैं, आत्मीयता के परिमाण में उतनी ही निकट आती जाती हैं।

मेरे अतीत बचपन के कोहरे में जो रेखाएँ अपने संपूर्ण महत्त्व के विविध रंगों में उदय होने लगती हैं, उनके आधारों में तीन ऐसे भी जीव हैं, जो मानव समष्टि के सदस्य न होने पर भी मेरी स्मृति में छपे से हैं। निक्की नेवला, रोजी कुत्ती और रानी घोड़ी।

रोजी की जैसे ही आँखें खुलीं, वैसे ही वह मेरे पाँचवें जन्म दिन पर, पिताजी के किसी राजकुमार विद्यार्थी द्वारा मुझे उपहार रूप भेंट कर दी गई। स्वाभाविक ही था कि हम दोनों साथ ही बढ़ते। रोजी मेरे साथ दूध पीती, मेरे खटोले पर सोती, मेरे लकड़ी के घोड़े पर चढ़कर घूमती और मेरे खेल–कूद में साथ देती। वस्तुतः मेरे पशु–प्रेम का आरम्भ रोजी के साहचर्य से माना जा सकता है, जो तेरह वर्ष की लम्बी अवधि तक अविच्छिन्न रहा।

रोजी सफेद थी, किंतु उसके छोटे–सुडौल कानों के कोने, पूँछ का सिरा, माथे का मध्यभाग और पंजों का अग्रांश कत्थई रंग का होने के कारण उसमें कत्थई किनारी वाली सफेद साड़ी की शबल रंगीनी का आभास मिलता है। वह छोटी पर तेज टैरियर जाति की कुत्ती थी, और कुछ प्रकृति से और कुछ हमारे साहचर्य से श्वान–दुर्लभ विशेषताएँ उत्पन्न हो जाने के कारण घर में उसे बच्चों के समान ही वात्सल्य मिलता था। हम सबने तो उसे ऐसा साथी मान लिया था, जिसके बिना न कहीं जा सकते थे और न कुछ खा सकते थे।

उस समय पिताजी इंदौर के डेली कॉलेज (जो राजकुमारों का विद्यालय था) के वाइस प्रिंसिपल थे और हम सब छावनी में रहते थे, जहाँ दूर तक कोई बस्ती नहीं थी। हमें पढ़ाने वाले शिक्षक प्रातः और संध्या समय आते थे। इस प्रकार दोपहर का समय हमारे लिए अवकाश का समय था, जिसे हम अति व्यस्तता में बिताते थे।

सबसे छोटा भाई तो हमारी व्यस्तता में साथ देने के लिए बहुत छोटा था, परन्तु मैं, मुझसे छोटी बहिन और उससे छोटा भाई दोपहर भर बया चिड़ियों के घोंसले तोड़ते, बबूल की सूखी और बीजों के कारण बजने वाली छीमियाँ बीनते घूमते रहते। ग्रीष्म में जब हवा ठहर–सी जाती थी, वर्षा से जब वातावरण गलकर बरसने सा लगता था, और शीत में जब समय जम–सा जाता था, हमारी व्यस्तता एक सी क्रियाशील रहती थी।

घूमते–घूमते थक जाने पर हमारा प्रिय विश्रामालय एक आम के वृक्ष से घिरा सूखा पोखर था, जिसका ऊँचा कगार पेड़ों की छाया में 8–9 फुट और खुली धूप में 4–5 फुट के लगभग गहरा था। कई आम के पेड़ों की शाखाएँ लम्बी–नीची और सूखे पोखर पर झूलती सी थी। सूखी पत्तियों ने झड़–झड़ कर सूखी गहराई को कई फुट भर भी डाला था। हम तीनों डाल पर बैठकर झूलते रहते या रॉबिंसन क्रूसो के समान अपने समतल समुद्र के गहरे टापू की सीमाएँ नापते रहते। घूमने के क्रम में यदि हमें कोई मकई का पौधा या करौंदे की झाड़ी फूली–फली मिल जाती तो, नंदन वन की प्रतीति होने लगती।

हमारे इस भ्रमण में रोजी निरंतर साथ देती। जब हम डाल पर बैठकर झूलते रहते, वह कगार के सिरे हमारे पैरों के नीचे बैठी कूदने के आदेश की आतुर प्रतीक्षा करती रहती। जब हम पोखर की परिक्रमा करते, वह हमारे आगे–आगे मानो राह दिखाने के लिए दौड़ती और जब हम मकई और करौंदे एकत्र करने लगते, तब वह किसी झाड़ी की छाया में बड़े विरक्त भाव से बैठी रहती। गर्मी के दिनों में आम के पेड़ों से छोटी–बड़ी अँबिया हवा के झोंके से नीचे गिरती रहती

और उनके गिरने के स्वर के साथ रोजी सूखे पोखर में कूदती और पत्तियों के सरसराहट से भरे समुद्र में से उसे खोज लाती। कच्ची कैरी की चेपी लग जाने से बेचारी का गुलाबी छोटा मुँह धबीला हो जाता, परंतु वह इस खोज–कार्य से विरत न होती।

दोपहर को पिताजी कॉलेज में रहते और माँ घर के कार्य में व छोटे भाई की देखभाल में व्यस्त रहती। रामा बाजार चला जाता और कल्लू की माँ या तो सोती या माँज–माँज कर बर्तन चमकाने में दत्तचित्ता रहती। वे सब समझते कि हम लोग या तो अपने कमरे में सो रहे हैं या पढ़ लिख रहे हैं। पर हम कुछ ऊँची खिड़की की राह से पहले रोजी को उतार देते और फिर एक–एक करके तीनों बाहर बगीचे में उतरकर करौंदे की झाड़ियों में छिपते–छिपते अपने उसी सूने मुक्ति लोक में पहुँच जाते। तीन में से किसी को भी कमरे में छोड़ना शंका से रहित नहीं था, क्योंकि वह बिस्कुट, पेड़ा, बर्फी आदि किसी उत्कोच के लोभ में मुखबिर बन सकता था। परिणामतः तीनों का जाना अनिवार्य था। रोजी भी हमारे निर्बन्ध सम्प्रदाय में दीक्षित हो चुकी थी, अतः वह भी साथ आती थी। हमारे अभियान के रहस्य को वह इतना अधिक समझ गई थी कि दोपहर होते ही खिड़की से कूदने को आकुल होने लगती और खिड़की से उतार दी जाने पर नीचे बैठकर मनोयोगपूर्वक हमारा उतरना देखती रहती। कभी खिड़की से कूदते समय हममें से कोई उसी के ऊपर गिर पड़ता था, पर वह चीं करना भी नियम–विरुद्ध मानती थी।

ऐसे ही एक स्वच्छंद विचरण के उपरांत जब हम आम की डाल पर झूल–झूलकर अपने संग्रहालय का निरीक्षण कर रहे थे, तब एक आम गिरने का शब्द हुआ। रोजी नीचे कूदी। कुछ देर तक वह पत्तियों में न जाने क्या खोजती रही, फिर हमने आश्चर्य से देखा कि वह मुँह से किसी जीव को दबाये हुए ऊपर ला रही है। वस्तुतः उस सूखे पोखर के नीचे कगार में बिल बनाकर किसी नकुल दम्पत्ति ने प्रजापति के कार्य में सक्रिय सहयोग देना आरम्भ किया था। उनकी नकुल सृष्टि का कोई लघु, परंतु हमारे ही समान अराजकतावादी सदस्य, अपने सृजनकर्ताओं की दृष्टि बचाकर सूखी पत्तियों के समुद्र में ऊपर तैर आया था। पत्तियों से छोटा मुँह निकालकर उसने जैसे ही बाहर के संसार पर विस्मित दृष्टि डाली, वैसे ही अपने–आपको रोजी के छोटे और अंधेरे मुख–विवर में पाया। निरन्तर बिना दाँत चुभाये कच्ची अंबिया लाते–लाते रोजी इतनी अभ्यस्त हो गई थी कि उस कुलबुलाते जीव को भी सुरक्षित हम तक ले आई।

आकार में वह गिलहरी से बड़ा न था, पर आकृति में स्पष्ट अन्तर था। भूरा चमकीला रंग, काली कत्थई आँखें, नर्म–नर्म पंजे, गुलाबी नन्हा मुँह, रोओं में छिपे हुए नन्हीं सीपियों से कान, सब कुछ देखकर हमें वह जीवित नन्हा खिलौना सा जान पड़ा। रोजी ने उसे हौले से पकड़ा था, परंतु बचने के संघर्ष में उसके कुछ खरोंच लग ही गई थी। चोट के अधिक भय से वह निश्चेष्ट था। उसे पा कर हम सब इतने प्रसन्न हुए कि अपने घोंसले, चिकने पत्थर, जंगली कनेर के फूल आदि का विचित्र संग्रहालय छोड़ कर उसे लिए हुए घर की ओर भागे। उस समय की उत्तेजना में हम अपने अज्ञात भ्रमण की बात भी भूल गए, परन्तु माँ ने यह नहीं पूछा कि वह छोटा जीव हमें कहाँ और कैसे मिला। उन्होंने जीव–जन्तुओं को न सताने के सम्बंध में लम्बा उपदेश देने के उपरांत, उसे उसके नकुल माता–पिता के पास बिल में रख आने का आदेश दिया।

हमें बेचारे नकुल शिशु से बड़ी सहानुभूति हुई। छोटे से बिल में रात–दिन पड़े माता–पिता के सामने बैठे रहने में जो कष्ट बच्चे को हो सकता है, उसका हम अनुमान कर सकते थे। यदि एक छोटे कमरे में हमें सामने बैठाकर बाबूजी रात–दिन पढ़ाते रहें और माँ सिलाई–बुनाई में लगी रहें, तो हमारा क्या हाल होगा। ऐसी ही कोई अप्रिय स्थिति बिल में रही होगी, नहीं तो यह इतना छोटा बच्चा भागता ही क्यों? अतः नकुल शिशु के बिल और बिल निवासी माता–पिता की खोज में हम अनिच्छापूर्वक गए और खोज में असफल होकर निराश से अधिक प्रसन्न लौटे।

अब तो उस लघु प्राणी का हमारे अतिरिक्त कोई आश्रय ही नहीं रहा। प्रसन्नतापूर्वक हमने अपने खिलौनों के छोटे बाक्स को खाली कर उसमें रूई और रेशमी रूमाल बिछाया। फिर बहुत अनुनय–विनय कर और उसके सब आदेश मानने का वचन देकर रामा को, उसे रूई की बत्ती से दूध पिलाने के लिए राजी किया। इस प्रकार हमारे लघु परिवार में एक लघूत्तम सदस्य सम्मिलित हुआ।

जब रामा की सतर्क देख–रेख में वह कुछ दिनों में स्वस्थ और पुष्ट होकर हमारा समझदार साथी हो गया, तब हम रामा को दिए वचन भूलकर, फिर पूर्ववत् अराजकतावादी बन गए।

माँ ने उसका नाम रखा नकुल, जो उसकी जाति वाचक संज्ञा का तत्सम रूप था, किन्तु न जाने संक्षिप्तीकरण की किसी प्रवृत्ति के कारण हम उसे निक्की पुकारने लगे।

पालने की दृष्टि से नेवला बहुत स्नेही और अनुशासित जीव है। गिलहरी के खाने योग्य कीट, पतंग, फल–फूल आदि कोई भी खाद्य खाकर वह अपने पालने वाले के साथ चौबीसों घंटे रह सकता है। जेब में, कन्धे पर, आस्तीन में, बालों में, जहाँ कहीं भी उसे बैठा दिया जावे, वह शांत स्थिर भाव से बैठकर अपनी चंचल पर सतर्क आँखों से चारों ओर की स्थिति देखता–परखता रहता था।

निक्की मेरे पास ही रहता था।

उस समय हमारे परिवार में छोटी लड़कियों की वेशभूषा में गोटे–पट्टे से सजा गरारा, कुर्ता और दुपट्टा विशेष महत्त्व रखता था, जिसमें मध्यकालीन बेगमों के लघु संस्करण जान पड़ती थी। कभी–कभी प्रगतिशीलता का प्रमाण देने के लिए उन्हें फ्रॉक भी पहनाए जाते थे, जिसे कॉलर, लेस, झालर आदि के घटाटोप में वे क्वीन विक्टोरिया की संगनियों का भ्रम उत्पन्न करके मानो दोनों का प्रतिनिधित्व करती थीं। हमारे जूते तक पूर्व–पश्चिम में विभाजित थे। पूर्व के वेश के साथ छोटी, हल्की और जरी के काम वाली जूतियाँ पहनकर हम घिसटते हुए चलते और पश्चिमीय वेश के साथ घुटने के ऊपर तक काले या सफेद मोजे चढ़ाकर ऊँची एड़ी वाले और तस्मे से कसे बंधे जूते पहनकर डगमगाते हुए चलते थे। हमारे मन और पैर दोनों ही संचरण पद्धति से विद्रोह करते थे, क्योंकि वह न हमें करौंदे की झाड़ियाँ लांघने देती और न दौड़ने। अतः हम आल्मारी में दोनों प्रकार के पदत्राण को छिपाकर खिड़की से कूदते और नंगे पैर कंकड़–पत्थरों पर दौड़ लगाते थे।

निक्की या तो मेरे दुपट्टे की चुन्नट में छिपा हुआ झूलता रहता या गर्दन के पीछे चोटी में छिप कर बैठता और कान के पास नन्हा मुँह निकालकर चारों ओर की गतिविधि देखता। रोजी

का कार्य तो हमारे साथ दौड़ना ही था, परन्तु निक्की की इच्छा होने पर ही अपने सुरक्षित स्थान से कूदकर दौड़ता। एक दिन जैसे ही हम खिड़की से नीचे उतरे, वैसे ही निक्की की सतर्क आँखों ने गुलाब की क्यारी के पास घास में एक लम्बे काले साँप को देख लिया और वह कूदकर उसके पास पहुँच गया। हमने आश्चर्य से देखा कि निक्की दो पिछले पैरों पर खड़ा होकर साँप को मानो चुनौती दे रहा है और साँप भी हवा में आधा उठकर फुफकार रहा है।

निक्की ने साँप को मार डाला, समझकर हम सब चीखने पुकारने और साँप को पत्थर मारने लगे। यदि हमारा कोलाहल सुनकर रामा न आ जाता, तो परिणाम कुछ दुःखद भी हो सकता था। उस दिन प्रथम बार में ज्ञात हुआ कि हमारा बालिश्त भर का निक्की कई फुट लम्बे साँप से लड़ सकता है। उन दोनों की लड़ाई मानो पेड़ की हिलती डाल से बिजली का खेल थी। निक्की साँप के सब ओर इतनी तेजी से घूम रहा था कि वह एक भूरे और घूमते हुए धब्बे की तरह लग रहा था। साँप फन पटक रहा था, फुफकार रहा था, उसे अपनी कुण्डली में लपेट लेने के लिए आगे–पीछे हट–बढ़ रहा था। परन्तु बिजली की तरह तड़प उठने वाले निक्की को पकड़ने में असमर्थ था। वह तेजी से उछल–उछल कर साँप के फन के नीचे पैने दाँतों से आघात कर रहा था।

रामा के कारण इस समय युद्ध का अन्त देखने के लिए तो हम बाहर खड़े न रह सके, परन्तु जब निक्की खिड़की पर आकर बैठा, तब हमने झाँककर साँप को कई खंडों में कटा देखा। निक्की के मुँह में विष न लगा हो, इस भय से रामा ने उसके मुँह को पानी में डुबा–डुबा कर धोया और फिर दूध दिया।

साँप जैसे विषधर को खण्ड–खण्ड करने की शक्ति रखने पर भी नेवला नितांत निर्विष है। जीव–जगत में जो निर्विष है, वह विष से मर जाता है और जिसमें अधिक मारक विष है, वह कम मारक वाले को परास्त कर देता है। पर नेवला इसका अपवाद है। वह विषरहित होने पर भी न सर्प के विष से मरता है और न संघर्ष में विषधर से परास्त होता है। नेवला सर्प की तुलना में बहुत कोमल और हल्का है। यदि साँप चाहे तो उसे अपनी कुण्डली में लपेटकर चूर–चूर कर डाले। फण के फूत्कार से मूर्च्छित कर दे, परन्तु वह नेवले के फूल से हल्केपन और बिजली और गति से परास्त हो जाता है। नेवला न उसे दंशन का अवसर देता है, न व्यूह रचना का अवकाश। और अपनी लाघवता के कारण नेवले को न विशेष अवसर चाहिए न सुयोग।

इसी बीच में बाबूजी ने मुझे शहर के मिशन स्कूल में भर्ती करने का निश्चय किया। इस योजना से तो हमारा समस्त कार्यक्रम ध्वस्त होने की सम्भावना थी, अतः हम सब अत्यंत दुखी और चिंतित हुए, परंतु विवशता थी।

अंत में एक दिन पुस्तकें लेकर और शिकरम (बन्द गाड़ी जो उन दिनों नागरिक प्रतिष्ठा की सूचक थी) में बैठकर मुझे जाना पड़ा।

निक्की सदा के समान मेरे साथ था, परंतु बाबूजी के आदेश से उसे घर पर छोड़ देना आवश्यक हो गया। मिशन स्कूल पहुँचकर देखा कि वह शिकरम की छत पर बैठकर वहाँ पहुँच गया है। फिर तो उसे कपड़ों में छिपाकर भीतर ले जाने में मुझे सफलता मिल गई। परंतु कक्षा में

उसे मेरे पास देखकर जो कोहराम मचा, उसने मुझे स्तम्भित और अवाक् कर दिया। She has brought a reptile throw it away आदि कहकर सिस्टर्स तथा सहपाठिनियाँ चिल्लाने–पुकारने लगीं, तब reptile का अर्थ न जानने पर भी मैंने समझ लिया कि वह निक्की के लिए अपमानजनक सम्बोधन है। मैंने कुछ अप्रसन्न मुद्रा में बार–बार कहा कि यह मेरा निक्की है, किसी को काटता नहीं, परंतु कोई उसके साथ बैठने को राजी नहीं हुआ। निरुपाय मैंने उसे फाटक के चहार दीवारी तक फैली लता में बैठा तो दिया, परंतु उसके खो जाने की शंका से मेरा मन पढ़ाई लिखाई से विरक्त ही रहा।

आने के समय जब निक्की कूदकर मेरे कंधे पर आ बैठा तब आनन्द के मारे मेरे आँसू आ गए। तब से नित्य यही क्रम चलने लगा। प्रतिदिन मुझे पहुँचाने और लेने रामा आता था और वह पालक के नाते निक्की के प्रति बहुत सदय था; अतः मार्ग में निक्की मेरी गोद में बैठकर आता था और मिशन के फाटक की लता में या बाग में घूम–घूमकर मेरी पढ़ाई के घंटे बिताता था। छुट्टी होने पर मेरे फाटक पर पहुँचते ही उसका कूदकर मेरे कंधे पर बैठ जाना इतना नियमित और निश्चित था कि उसमें कुछ मिनटों का हेर–फेर भी कभी नहीं हुआ।

मिशन का वातावरण मेरे लिए घर के वातावरण से भिन्न था। वहँ की वेशभूषा भिन्न थी, प्रार्थना भिन्न थी, चित्र, मूर्ति आदि भिन्न थे, ईश्वर नाम भी भिन्न था, और उन सबसे बड़ी भिन्नता यह थी कि निक्की का वहाँ प्रवेश निषिद्ध था।

इसके उपरांत हमारे परिवार में एक सबसे बड़ा जीव सम्मिलित हुआ।

रियासत होने के कारण इंदौर में शानदार घोड़ों और सवारों का आधिक्य था। इसके अतिरिक्त हम अंग्रेजों के बच्चों को छोटे टट्टुओं या सफेद गधों (जिनकी जाति के सम्बंध में रामा ने हमारा ज्ञान वर्धन किया था) में घूमते देखते थे। रामा की कहानियों में तो राजा अपराधियों को गधे पर चढ़ाकर देश निकाला देता था। इन्हें गधों पर बैठकर प्रसन्नता से घूमते देखकर विश्वास करना कठिन था कि इन्हें दंड मिला है। रामा के पास हमारी जिज्ञासा का समाधान था। इन्हें विलायत में गधे बैठने का दंड देकर भारत भेजा गया है, क्योंकि वहाँ यह वाहन नहीं है।

एक दिन हम तीनों ने बाबूजी को मौखिक स्मृतिपत्र (मेमोरेंडम) दिया कि हमारे पास छोटा घोड़ा न रहना अन्याय की बात है। यदि अन्य बच्चों को घोड़े पर बैठने का अधिकार है, तो हमें भी यह अधिकार मिलना चाहिए।

बाबूजी ने हँसते हुए पूछा, सफेद टट्टू पर बैठोगे ? 'तुम कहो' – 'तुम कहो' के साथ ठेलमठाल के उपरांत मैंने अगुआ होकर गम्भीर मुद्रा में उत्तर दिया, ''सफेद टट्टू तो गधा होता है, जिस पर बैठाकर सजा दी जाती है।''

पता नहीं, हमारे ज्ञान के अजस्र स्रोत रामा को बाबूजी ने डाँटा या नहीं, परन्तु कुछ दिन बाद हमने देखा कि एक छोटा सा चाकलेट रंग का टट्टू आँगन के पश्चिम वाले बरामदे में बाँधा गया है। बरामदा तो घोड़े बाँधने के लिए बनाया नहीं गया था, अतः बाहर से टट्टू को लाने, ले जाने के लिए दीवाल में एक नया दरवाजा लगाया गया और उसकी मालिश करने तथा खाने, पीने, घूमने आदि की देखरेख के लिए छुट्टन नाम का साईस रखा गया। अब तो हम उस छोटे

टट्टू से बहुत प्रभावित और आतंकित हुए। हमारे साथ हमारे अन्य साथी जीवों के लिए न मकान में कोई परिवर्तन हुआ, न कोई विशेष नौकर रखा गया। रामा को तो नौकर कहा नहीं जा सकता, क्योंकि वह तो डाँटने–फटकारने के अतिरिक्त हमारे कान भी खींचता था। और हमारी खिड़की तक दरवाजे में परिवर्तित न हो सकी, जिससे हम रोजी और निक्की के साथ कूदने के कष्ट से मुक्त हो सकते। बाबूजी से यह सुनकर भी कि वह टट्टू हमारी सवारी के लिए आया है, हम सब चार–पाँच दिन उससे रुष्ट और अप्रसन्न ही घूमते रहे, परंतु अंत में उसने हमारी मित्रता प्राप्त कर ही ली। रामा से उसका नाम पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसे ताजरानी कहकर पुकारा जाता है। ताजमहल का चित्र हमने देखा था और रामा और कल्लू की माँ की सभी कहानियों में रानी के सुख–दुःख की गाथा सुनते–सुनते हम उसके प्रति बड़े सदय हो गए थे। ताज–महल जैसे भवन की रानी होने पर भी यह यहाँ से कहानी की रानी की तरह निकाल दी गई है, यह कल्पना करते ही हमारी सारी ईर्ष्या और सारा रोष करुणा से पिघल गया और हम उसे और अधिक आराम देने के उपाय सोचने लगे।

वह इतनी सुंदर थी कि अब तक उसकी छवि आँखों में बसी जैसी है। हल्का चाकलेटी चमकदार रंग, जिस पर दृष्टि फिसल जाती थी। खड़े छोटे कानों के बीच में माथे पर झूलता अयाल का गुच्छ, बड़ी, काली स्वच्छ और पारदर्शी जैसी आँखें, लाल नथुने जिन्हें फुला–फुलाकर वह चारों ओर की गंध लेती रहती। उजले दाँत और लाल जीभ की झलक देते हुए गुलाबी ओठों वाला लम्बा मुँह, जो लोहा चबाते रहने पर भी क्षत–विक्षत नहीं होता था। ऊँचाई के अनुपात से पीठ की चौड़ाई अधिक थी। सुडौल, मजबूत पैर और सघन पूँछ जो मक्खियाँ उड़ाने के क्रम में मोरछल के समान उठती–गिरती रहती थी। उस समय यह सब समझने की बुद्धि नहीं थी, परन्तु इतने दीर्घ काल के उपरान्त भी स्मृति पट पर वे रेखाएँ ऐसे उभर आती हैं, जैसे किसी अदृश्य स्याही में लिखे अक्षर अग्नि के ताप से प्रत्यक्ष होने लगते हैं।

हम बार–बार सोचते हैं कि वह कुछ और छोटी क्यों न हुई। होती तो हम रोजी और निक्की के समान उसे भी अपने कमरे में रख लेते।

रानी को अपने कमरे में ले जाना संभव नहीं था, अतः अस्तबल बना हुआ बरामदा ही हमारी अराजकता का कार्यालय बना।

बरामदा घोड़े बांधने के लिए तो बना नहीं था, अतः उसकी दीवार में एक खुली अल्मारी और कई आले–ताख थे। उन्हीं में हमारा स्वेच्छया विस्थापित और शरणार्थी खिलौनों का परिवार स्थापित होने लगा।

रानी की गर्दन में झूल–झूलकर, उसके कान और अयाल में फल खोंस–खोंस कर और उसको बिस्कुट, मिठाई आदि खिला–खिला कर, थोड़े ही दिनों में हमने उससे ऐसी मैत्री स्थापित कर ली कि हमें न देखने पर वह अस्थिर होकर पैर पटकने और हिनहिनाने लगती।

फिर हमारी घुड़सवारी का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। मेरे और बहिन के लिए सामान्य, छोटी पर सुन्दर जीन खरीदी गई और भाई के लिए चमड़े के घेरे वाली ऐसी जीन बनवाई गई, जिससे संतुलन खोने पर भी गिरने का भय नहीं था।

बाहर के चबूतरे पर खड़े होकर हम बारी–बारी से रानी पर आरूढ़ होते और छुट्टन साथ दौड़ता हुआ हमें घुमाता। सवेरे भाई–बहिन घूमते और स्कूल से लौटने पर तीसरे पहर या संध्या समय मेरे साथ वह कार्यक्रम दोहराया जाता।

परंतु ऐसी सवारी से हमारी विद्रोह प्रकृति कैसे संतुष्ट हो सकती थी। अस्तबल में रानी की गर्दन में झूलकर तथा स्टूल के सहारे उसकी पीठ पर चढ़कर भी हमें संतोष न होता था।

अंत में एक छुट्टी के दिन दोपहर में सबके सो जाने पर हम रानी को खोलकर बाहर ले आए और चबूतरे पर खड़े होकर, उसकी नंगी पीठ पर सवारी करके बारी–बारी से अपनी अधूरी शिक्षा की पूरी परीक्षा देने लगे।

यह स्वाभाविक ही था कि ताजरानी हमारी अराजक प्रवृत्तियों से प्रभावित हो जाती। वास्तव में बालकों में चेतना के विभिन्न स्तरों का बोध न होकर, सामान्य चेतना का ही बोध रहता है। अतः उनके लिए पशु–पक्षी, वनस्पति सब एक परिवार के हो जाते हैं।

निक्की रानी की पूंछ से झूलने लगता था, रोजी इच्छानुसार उसकी गर्दन पर उछलकर चढ़ती और नीचे कूदती थी। और हम सब उसकी पीठ पर ऐसे गर्व से बैठते थे मानो मयूर सिंहासन पर आसीन हैं।

रानी हम सबकी शक्ति और दुर्बलता जानती थी। उसकी नंगी पीठ पर अयाल पकड़कर बैठने वालों को वह दुल्कीचाल से इधर–उधर घुमाकर संतुष्ट कर देती थी। परंतु एक बार मेरे बैठ जाने पर भाई ने अपने हाथ की पतली संटी उसके पैरों में मार दी। चोट लगने की तो संभावना ही नहीं थी, परन्तु इससे न जाने उसका स्वाभिमान आहत हो गया या कोई दुखद स्मृति उभर आई। वह ऐसे वेग से भागी मानो सड़क, पेड़, नदी, नाले सब उसे पकड़ बाँध रखने का संकल्प किए हों।

कुछ दूर मैंने अपने आपको उस उड़न खटोले पर सँभाला। परन्तु गिरना तो निश्चित था। मेरे गिरते ही रानी मानो अतीत से वर्तमान में लौट आई और इस प्रकार निश्चल खड़ी रह गई, जैसे पश्चाताप की प्रस्तर प्रतिमा हो। साथियों की चीख–पुकार से सब दौड़े और फिर बहुत दिनों तक मुझे बिछौने पर पड़ा रहना पड़ा। स्वस्थ होकर रानी के पास जाने पर वह ऐसी करुण पश्चाताप भरी दृष्टि से मुझे देखकर हिनहिनाने लगी कि मेरे आँसू आ गए। एक बार भाई के जन्म दिन पर नानी ने उसके लिए सोने के कड़े भेजे। सामान्यतः हम कोई भी नया कपड़ा या आभूषण पहन कर रानी को दिखाने अवश्य जाते थे। सुन्दर छोटे–छोटे शेर मुँहवाले कड़े पहनकर भाई भी रानी को दिखाने गया। और न जाने किस प्रेरणा से वह दोनों कड़े उतारकर रानी के खड़े सतर्क कानों में वलय की तरह पहना आया।

फिर हम सब खेल में कड़ों की बात भूल गए। संध्या समय भाई के कड़े रहित हाथ देखकर जब माँ ने पूछताछ की तब खोज आरम्भ हुई। पर कहीं भी कड़ों का पता नहीं चला।

रानी अपने कोने को खुरों से खोदती और हिनहिनाती रही। अन्त में बाबूजी का ध्यान उसकी ओर गया और उन्होंने छुट्टन को कोने की मिट्टी हटाने का आदेश दिया किसी ने कुछ गहरा गड्ढा खोदकर दोनों कड़े गाड़ दिए थे। दण्ड तो किसी को नहीं मिला, परंतु रानी सारे घर के हृदय में स्थान पा गई।

फिर अचानक हमारे अराजक राज्य पर क्रान्ति का बवंडर बह गया और हमें समझदारों के देश में निर्वासित होना पड़ा। अवकाश के दिनों में जब हम घर लौटे, तब निक्की मर चुका था। रानी और उसका बच्चा पवन किसी को दे दिए गए थे। केवल दुर्बल, अकेली और खोई–सी रोजी हमारे पैरों से लिपट कर कू–कू करके रोने लगी।

शब्दार्थ

अतीत–बीता हुआ/ अनुभूत–अनुभव होने की दशा, भाव या गुण, संवेदन, बोध/अविच्छिन्न–सतत, निरन्तर/ आत्मीयता–मित्रता, अपना खास रिश्ता/ आरूढ़ –चढ़ने वाला, चढ़ा हुआ/ आहत–चोट खाया हुआ/ उत्कोच–घूस, रिश्वत/ उपहार –भेंट/ दत्तचित्त–जिसका चित्त किसी ओर लगा हो/ पदत्राण–पैरों की रक्षा करने वाला जूता/ मनोयोग–चित्तवृत्ति का निरोध करके और किसी एक विषय पर लगाना/ लघूत्तम–सबसे छोटा/ वात्सल्य–माता–पिता का अपनी सन्तति पर प्रेम/ विवर–खोह, गुहा, बिल/ विस्मित–आश्चर्यजनक/ सतर्क–सावधान, तर्क युक्त/ समष्टि–सामूहिकता/ स्मृतियाँ–यादें/ सहानुभूति–किसी के कष्ट को देखकर स्वयं दुखी होना।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'निक्की, रोजी और रानी' पाठ किस पुस्तक से लिया गया है ?
   (क) 'पीड़ा' से (ख) 'आँसू' से
   (ग) 'माधुर्य' से (घ) 'मेरा परिवार' से ( )
2. 'निक्की, रोजी और रानी' क्रमशः थे –
   (क) नेवला, कुत्ता, साँप (ख) कुत्ता, घोड़ा, नेवला
   (ग) नेवला, कुत्ता, घोड़ा (घ) साँप, नेवला, कुत्ता ( )
   उत्तरमाला–(1) घ (2) ग

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'रोजी' किस प्रजाति की कुतिया थी ?
2. लेखिका को 'नकुल शिशु' कहाँ मिला था ?
3. रामा 'नकुल शिशु' को दूध किससे पिलाता था ?
4. रानी की देखभाल के लिए किसे रखा गया ?
5. रानी के रहने का स्थान क्या था ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'निक्की और साँप' की लड़ाई का सजीव चित्रण कीजिए।
2. रोजी की सुंदरता का वर्णन कीजिए।
3. निक्की के कारण मिशन स्कूल में क्या घटना घटी ?
4. रामा ने टट्टुओं के संबंध में क्या कहानी बताई ?
5. मिशन स्कूल के वातावरण का चित्रण कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. 'निक्की, रोजी और रानी' रचना के आधार पर महादेवी वर्मा के पशु प्रेम का वर्णन कीजिए।
2. रानी के आकार–प्रकार का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

•••

यह भी जानें

अनुनासिकता चिह्न (चंद्रबिंदु ँ)

(क) हिंदी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।

(ख) अनुनासिक चिह्न व्यंजन नहीं है, स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में मुँह और नाक से हवा निकलती है। जैसे – आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

(ग) चंद्रबिंदु के प्रयोग के बिना प्रायः अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है। जैसे – हंस : हँस, अंगना–अँगना, स्वांग (स्व+अंग)–स्वाँग आदि में। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए।

(घ) जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो तो चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिह्न का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी। जैसे – नहीं, मैं, में आदि।

•••

13. नशा

• प्रेमचंद

लेखक परिचय

हिंदी कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद का नाम सर्वाधिक आदर के साथ लिया जाता है। इनका जन्म सन् 1880 में वाराणसी जिले के लमही नामक ग्राम में हुआ था। बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही आपको शिक्षा विभाग में सब डिप्टी इंसपेक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया गया। किंतु अपने स्वतंत्र विचारों और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के कारण इन्हें शीघ्र ही सरकारी सेवा से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके बाद वे स्वतंत्र रहकर साहित्य–सृजन करते रहे।

प्रेमचंद ने पहले उर्दू में लिखना प्रारंभ किया। हिंदी में पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' छपी। आपने 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस', 'जागरण' आदि कई प्रसिद्ध हिंदी पत्रिकाओं का सम्पादन किया। कुछ दिनों तक आपने सिनेमा–जगत् में काम किया किंतु वहाँ का माहौल अनुकूल न होने के कारण आप को वहाँ से चला आना पड़ा।

मुंशी प्रेमचंद शोषित एवं पीड़ित समाज के प्रतिनिधि लेखक थे। आप की सहानुभूति दलित वर्ग–शोषित किसान–मजदूर एवं उपेक्षित नारी समाज के प्रति रही है। भारतीय कृषक–जीवन की पीड़ित अवस्था का जैसा हृदयस्पर्शी तथा रोमांचित कर देने वाला चित्रण आपने किया है वैसा अन्य लेखकों द्वारा संभव नहीं हुआ। आपकी रचनाओं में ठेठ भारत के दर्शन होते हैं।

प्रेमचंद के साहित्य पर गाँधीवाद का पर्याप्त प्रभाव है। तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा में प्रायः प्रगतिशील विचारों के पक्षधर हैं। आपके विचार में साहित्य को समाज का दर्पण ही नहीं, मशाल भी होना चाहिए।

मुंशी जी की भाषा सहज, स्वाभाविक और सुबोध है। उर्दू से हिंदी में आने के कारण प्रेमचंद की भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता मिलती है। लोकोक्तियों, मुहावरों एवं सूक्तियों के प्रयोग में आप सिद्ध हस्त हैं।

प्रेमचंद जी ने लगभग तीन सौ कहानियाँ तथा एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं। हिंदी कथा साहित्य को आपने एक नवीन मोड़ दिया। अभी तक जिन कहानियों और उपन्यासों में तिलिस्म और जासूसी की प्रधानता थी प्रेमचंद ने उन कहानियों–उपन्यासों को सामाजिक समस्याओं का प्रस्थान बिंदु बनाया।

आपने अपने साहित्य के माध्यम से जीवन का सच्चा एवं यथार्थ चित्र उपस्थित कर के पीड़ित एवं शोषित जनता में जागरण का संदेश पहुँचाया, वह हमेशा महत्त्वपूर्ण रहेगा।

पाठ परिचय

प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंद जी ने कथनी और करनी की विसंगति पर जबरदस्त व्यंग्य किया है। प्रायः ही हम उपदेश देने में चतुर होते हैं, परिवर्तन और क्रांति की बातें करते हैं, सामंती विलासिता को धिक्कारते हैं लेकिन अवसर आने पर हमारा मन उपदेश के अनुकूल आचरण नहीं करता। हमारा मन दूसरों का शोषण करते समय ग्लानि का अनुभव नहीं करता। तर्क, बुद्धि और

समझ हमारा साथ छोड़ देती है और हम उसी वृत्ति का अनुसरण करते हैं, जिसकी हम प्रायः निंदा करते होते हैं।

प्रस्तुत कहानी का मुख्य पात्र जमींदार के पुत्र ईश्वरी के उच्च रहन–सहन उनके गरीबों के प्रति निर्दयतापूर्ण आचरण एवं सामंतशाही की तीव्र निंदा करता है लेकिन ज्यों ही उसे ईश्वरी के साथ गाँव जाने का अवसर मिलता है वह अपने व्यवहार में ईश्वरी से भी अधिक निरंकुश और निर्दयी हो जाता है। वह गरीबों का पक्षधर व्यक्ति थोड़े ही दिनों में सामन्ती मौज–शौक और वातावरण से प्रभावित हो जाता है कि लौटते समय रेल में सामान्य मानवीय गुणों को ठुकरा कर दीन–हीन मुसाफिर के साथ हृदय–शून्य एवं निर्मम व्यवहार करता है। उसका 'नशा' तब उतरता है जब अन्य मुसाफिरों के साथ उसका मित्र स्वयं ईश्वरी उसके अभद्र व्यवहार से रुष्ट होकर उसे फटकारता है।

मूल पाठ

ईश्वरी एक बड़े जमींदार का लड़का था और मैं एक गरीब क्लर्क का जिसके पास मेहनत–मजदूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं मैं जमींदारों की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और खून चूसनेवाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलने वाला बंझा कहता। वह जमींदारों का पक्ष लेता; पर स्वभावतः उसका पहलू कुछ कमजोर होता था; क्योंकि उसके पास जमींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। यह कहना कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते, छोटे–बड़े हमेशा होते रहते हैं और होते रहेंगे, लचर दलीलें थीं। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवसाय का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद–विवाद की गर्मा–गर्मी में अक्सर तेज हो जाता और लगने वाली बात कह जाता; लेकिन ईश्वरी हार कर भी मुस्कराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमजोरी समझता था। नौकरों से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दण्डता होती है, इसमें उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकरों ने बिस्तर लगाने में जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठंडा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीजी उसे जरा भी बर्दाश्त नहीं थी; पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा होता था। शायद उसकी जगह मैं होता तो मुझमें भी वही कठोरताएँ पैदा हो जातीं, जो उसमें थीं, क्योंकि मेरा लोकप्रेम सिद्धांत पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था। वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से विलासी और ऐश्वर्य–प्रिय था।

अब की दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराये के लिए रुपये न थे और मैं घर वालों को तकलीफ नहीं देना चाहता था। जानता हूँ, वे मुझे जो कुछ देते हैं वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा है। इसके साथ ही परीक्षा का ख्याल भी था। अभी बहुत कुछ पढ़ना बाकी था और घर जाकर कौन पढ़ता है बोर्डिंग–हाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। इसलिए जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का न्योता दिया तो मैं बिना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जाएगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने इसके साथ ही कहा – लेकिन भाई एक बात का ख्याल रखना वहाँ अगर जमींदारी की निंदा की तो मामला बिगड़ जायेगा और मेरे घर वालों को बुरा लगेगा। वह लोग तो असामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। असामी भी वही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाय कि जमींदार और असामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारों का कहीं पता न लगे।

मैंने कहा – ''तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहां जाकर कुछ और हो जाऊँगा ?''

''हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।''

''तुम गलत समझते हो।''

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया। और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता तो भी अपनी जिद पकड़ लेता है।

सैकण्ड क्लास तो क्या मैंने कभी इण्टर क्लास में भी सफर न किया था। अब सैकण्ड क्लास में सफर करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी; पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को ही स्टेशन जा पहुँचे। कुछ देर इधर–उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेण्ट–रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेश–भूषा और रंग–ढंग से पारखी खानसामों को पहचानने में देरी न लगी कि मालिक कौन है और पिछलग्गू कौन; लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी की जेब से गये। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामों को इनाम–इकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ने ही दी। फिर भी मैं उन सभी से उसी तत्परता और विनय की प्रतीक्षा करता था जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे। ईश्वरी के हुक्म पर तो सब दौड़ते हैं लेकिन मैं कोई चीज मांगता हूँ तो उतना उत्साह नहीं दिखाते। मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। वह भेद मेरे ध्यान को संपूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आयी, हम दोनों सवार हुए। खानसामे ने ईश्वरी को सलाम किया, मेरी ओर देखा भी नहीं।

ईश्वरी ने कहा–कितने तमीजदार हैं ये सब ? एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढंग नहीं।

मैंने खट्टे मन से कहा–इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो तो इससे ज्यादा तमीजदार हो जायें।

''तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच में इतना अदब करते हैं।''

''जी नहीं, कदापि नहीं। तमीज और अदब तो इनके रक्त में मिल गया है।''

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयाग से चली तो प्रतापगढ़ जा कर रुकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरन्त चिल्ला उठा–दूसरा दरजा है–सैकण्ड कलास है।

उस मुसाफिर ने डिब्बे के अंदर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा–जी हाँ, सेवक भी इतना समझता है। और बीच वाली बर्थ पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आयी, कह नहीं सकता।

भोर होते–होते हम लोग मुरादाबाद पहुँचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे। दो भद्र पुरुष थे। पांच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे–पीछे चले। एक मुसलमान था रियासत अली, दूसरा ब्राह्मण था, रामहरख। दोनों ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रों से देखा, मानों कह रहे हैं, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे।

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा–यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं ?

ईश्वरी ने जबाब दिया – हाँ, साथ पढ़ते भी हैं, और साथ रहते भी हैं, यों कहिए कि आप ही के बदौलत मैं इलाहाबाद में पड़ा हुआ हूँ, नहीं कब का लखनऊ चला आया होता। अब की मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे, मगर मैंने इन्कारी जवाब दिलवा दिये। आखिरी तार तो अर्जेण्ट था, उसकी फीस चार आने प्रति शब्द थी; पर यहाँ से उसका जवाब भी इन्कारी ही गया।

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतंकित हो जाने की चेष्टा करते हुए जान पड़े।

रियासत अली ने अद्‌र्ध शंका के स्वर में कहा – लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं।

ईश्वरी ने शंका निवारण की – महात्मा गांधी के भक्त हैं साहब। खद्‌दर के सिवा और कुछ पहनते ही नहीं। पुराने सारे कपड़े जला डाले यों कहो कि राजा हैं। ढाई लाख सालाना की रियासत है, पर आपकी सूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़ कर आये हैं।

रामहरख बोले – अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भाँप नहीं सकता।

रियासत अली ने समर्थन किया – आपने महाराज चांगली को देखा होता तो दाँतों ऊँगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरोधा जूता पहने बाजार में घूमा करते थे। सुनते हैं एक बार बेगार में पकड़े गये थे, और उन्हीं ने दस लाख से कालेज खोल दिया।

मैं मन में कटा जा रहा था; पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मन में उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हां, लड़कपन में कई बार लद्‌द घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो कलॉरास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गयी। सवार तो हुआ; पर बोटियाँ कांप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत तो यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़ों को तेज न किया वरना शायद मैं हाथ–पाँव तुड़वाकर लौटता। सम्भव है ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में है।

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का–सा फाटक, द्‌वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब ही नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बांधी कि कुछ न पूछिए। नौकर–चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे देहात के अमींदार, लाखों

का मुनाफा मगर पुलिस कान्स्टेबिल को भी अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर–हुजूर करने लगे।

जब जरा एकांत हुआ, तो मैंने ईश्वरी से कहा–तुम बड़े शैतान हो या, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो ?

ईश्वरी ने सुदृढ़ मुस्कान के साथ कहा – इन गधों के सामने यही चाल जरूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।

जरा देर बाद एक नाई हमारे पांव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गये होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा – पहले कुँवर साहब के पांव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन में ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पांव दबाये हों। मैं इसे अमीरों के चोंचले, रईसों का गधापन और बड़े आदमियों की मुटमरदी और जाने क्या–क्या कह कर ईश्वरी का परिहास किया करता, और आज मैं पोतड़ों का रईस बनने का स्वांग भर रहा था।

इतने में दस बज गये। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नयी रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुँच पायी थी। अंदर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छांट लिया करता हूँ, मगर यहां मैंने ईश्वरी की ही भांति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने हाथों अपनी धोती छांटते शर्म आ रही थी। अंदर भोजन करने चले। होटल में जूते पहने मेज पर जा डटते थे। यहाँ पांव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिये खड़ा था। ईश्वरी ने पांव बढ़ा दिये। कहार ने उसके पांव धोये। मैंने भी पांव बढ़ा दिये। कहार ने मेरे पांव भी धोये। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

सोचा था, वहाँ देहात में एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे, पर यहाँ सारा दिन सैर–सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं, कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं। कहीं शतरंज पर जमें हैं। ईश्वरी खूब अंडे मँगवाता और कमरे में स्टोव पर आमलेट बनते हैं। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ–पांव हिलाने की जरूरत नहीं। केवल जबान हिला देना काफी है। नहाने बैठे तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटे तो दो आदमी पंखा झलने को खड़े। मैं महात्मा गांधी का कुँवर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक थी नाश्ते में जरा भी देर होने पाये, कहीं कुँवर साहब नाराज न हो जायँ। बिछावन ठीक समय पर लग जाय, कुँवर साहब का सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग बन गया था, या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछा ले, लेकिन कुँवर मेहमान अपने हाथों से कैसे अपना बिछावन बिछा सकते हैं ? उनकी महानता में बट्टा लग जाएगा।

एक दिन सचमुच यही बात हो गयी। ईश्वरी घर में था। शायद अपनी माता से कुछ बात चीत करने में देर हो गई। यहाँ दस बज गये मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं; मगर बिस्तर कैसे लगाऊँ ? कुँवर जो ठहरा। कोई साढ़े ग्यारह बजे महरा आया। बड़ा मुँह लगा नौकर था। घर के धन्धों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुध न रही। अब जो याद आयी तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डांट बतायी कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डांट सुनकर बाहर निकल आया और बोला.....तुमने बहुत अच्छा किया। यह सब हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गयी; मगर लैम्प न जला। लैम्प मेज पर रक्खा हुआ था। दियासलाई भी वहीं थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प न जलाता। फिर कुँवर साहब कैसे जलायें ? झुंझला रहा था। समाचार–पत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था पर लैम्प नदारद। दैवयोग से उसी वक्त मुंशी रियासत अली आ निकले मैं उन्हीं पर उबल पड़ा, ऐसी फटकार बतायी कि बेचारा उल्लू.....हो गया तुम लोगों को इतनी फिक्र भी नहीं है, लैम्प तो जलवा दो। मालूम नहीं ऐसे कामचोर आदमियों का यहाँ कैसे गुजर होता है। मेरे यहाँ घंटे भर निर्वाह न हो। रियासत अली ने काँपते हुए हाथों से लैम्प जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था। महात्मा गांधी का परम भक्त। मुझे महात्मा जी का चेला समझ कर मेरा बड़ा लिहाज करता था; मुझे कुछ पूछते संकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बांध कर बोला – सरकार तो गान्धी बाबा के चेले हैं न ? लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जाएगा तो जमींदार न रहेंगे।

मैंने शान जमायी – जमींदारों को रहने की जरूरत ही क्या है ? यह लोग गरीबों को खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं ?

ठाकुर ने फिर पूछा – तो क्या सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जायगी ?

मैंने कहा – बहुत से लोग तो खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे तो उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तैयार बैठे हुए हैं। ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके असामियों के नाम हिबा कर देंगे।

मैं कुरसी पर पांव लटकाये बैठा था। ठाकुर मेरे पांव दबाने लगा। फिर बोला ..... आजकल जमींदार लोग बड़ा जुल्म करते हैं सरकार! हमें भी हुजूर अपने इलाके में थोड़ी–सी जमीन दे दें, तो चल कर वहीं आपकी सेवा में रहें।

मैंने कहा – अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है भाई; लेकिन ज्यों ही अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलवाऊँगा। तुम्हें मोटर ड्राईवरी सिखा कर अपना ड्राईवर बना लूंगा।

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भंग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गांव के महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया।

छुट्टी इसी तरह समाप्त हुई और हम फिर प्रयाग चले। गांव के बहुत से लोग हम लोगों को पहुँचाने आये। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुबेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हरेक हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था हरेक नौकर को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन वह सामर्थ्य कहां थी ? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था; गाड़ी आयी तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गापूजा की छुट्टियाँ भोग कर सभी लोग लौट रहे थे। सैकण्ड क्लास में तिल रखने को जगह नहीं। इण्टर क्लास की हालत उससे भी बदतर। यही आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दर्जे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहां अपना रंग जमा लिया मगर मुझे उसमें बैठना बुरा लग रहा था। आये थे आराम से लेटे–लेटे जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह नहीं थी।

कई आदमी पढ़े–लिखे भी थे। वे आपस में अँगरेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले–ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे–बड़े सब बराबर। राजा भी किसी प्रकार अन्याय करें, तो अदालत उनकी भी गर्दन दबा देती है।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया – अरे साहब, आप बादशाह पर दावा कर सकते हैं। अदालत में बादशाह पर डिक्री हो जाती है।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा–सा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने को जगह न मिलती थी। पीठ पर बाँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार–बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा हुआ था। उसका बार–बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों ही कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना मानो मेरा गला दबाना था। मैं कुछ देर तक जब्त किये बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़ कर पीछे धकेल दिया और दो तमाचे जोर–जोर से लगाये।

उसने आंख निकाल कर कहा–क्यों मारते हो बाबू जी ? हमने भी किराया दिया है। मैंने उठ कर दो–तीन तमाचे और जड़ दिये।

गाड़ी में तूफान आ गया। चारों ओर से मुझ पर बौछार पड़ने लगी।

''अगर इतने नाजुक–मिजाज हो तो अव्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे।''

''कोई बड़ा आदमी होगा तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते, तो दिखा देता।''

''क्या कसूर किया था बेचारे ने ? गाड़ी में सांस लेने की जगह नहीं खिड़की पर जरा सांस लेने खड़ा हो गया तो उस पर इत्ता क्रोध। अमीर होकर क्या आदमी इंसानियत बिलकुल खो देता है!''

''यह अँगरेजी राज है जिसका आप बखान कर रहे थे।''

एक ग्रामीण बोला – दफ्तर मां घुस पावत नाहीं, ओपे इत्ता मिजाज ?

ईश्वरी ने अँगरेजी में कहा – What an idiot you are, Bir!

और मेरा नशा अब कुछ–कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।

•••

शब्दार्थ

जहीन–समझदार, बुद्धिमान/असामी–जमींदार से लगान पर खेत जातने के लिए लेने वाला व्यक्ति/ इंसानियत–मानवीयता/

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ''एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरंत चिल्ला उठा दूसरा दर्जा है सैकण्ड क्लास है।'' ईश्वरी के मित्र के पीछे चिल्लाने का भाव था ?

   (क) अहंकार (ख) क्रोध

   (ग) हीनता (घ) काईयापन ( )

2. 'नशा' कहानी में किस विसंगति पर व्यंग्य किया गया ?

(क) उपदेशात्मकता (ख) कथनी और करनी में अंतर

(ग) शोषण चक्र (घ) जमींदारी प्रथा ( )

उत्तरमाला– (1) क (2) ख

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'नशा' कहानी के कहानीकार कौन हैं ?
2. ईश्वरी के मित्र के पिता क्या काम करते थे ?
3. ईश्वरी के मित्र के लिए लैम्प किसने जलाया ?
4. प्रेमचंद का जन्म कहाँ हुआ ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अब की दशहरे की छुट्टियों में ईश्वरी का मित्र घर क्यों नहीं जाना चाहता था ?
2. ईश्वरी ने अपने नौकरों के सामने मित्र का बढ़ा–चढ़ा कर परिचय क्यों दिया ?
3. ईश्वरी का मित्र उसकी आलोचना क्यों करता था ?
4. प्रेमचंद की इस कहानी का मूल आशय स्पष्ट कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. ईश्वरी और उसके मित्र की चारित्रिक विशेषताओं को बताइए।
2. गाँव जाते ही ईश्वरी के मित्र के स्वभाव में आए परिवर्तन का वर्णन कीजिए।

•••

यह भी जानें

विसर्ग (1)

(क) संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे शब्द यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए। जैसे – 'दुःखानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे – 'दुख–सुख के साथी'।

(ख) तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। जैसे – अतः, पुनः, स्वतः, प्रायः, पूर्णतः, मूलतः, अंततः, वस्तुतः, क्रमशः आदि।

(ग) 'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, अतः उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी भी हालत में न किया जाए। (अतः, पुनः, आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा)।

(घ) दुःसाहस/दुस्साहस, निःशब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें द्वित्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

•••

14. भारतीय नारी

• स्वामी विवेकानंद

लेखक परिचय

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 को मकर संक्रांति के दिन कोलकाता में हुआ। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त और माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। बाल्यकाल में उनका नाम नरेन्द्र था। वे अत्यंत मेधावी और जिज्ञासु थे। तरुणावस्था में वे दक्षिणेश्वर काली मंदिर के उपासक रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आए और वहाँ से उनके जीवन की दिशा ही बदल गई। 1887 में रामकृष्ण परमहंस के स्वर्गारोहण के बाद उन्होंने संन्यास धारण किया। वे परिव्राजक बन देश भर में भ्रमण करते रहे। इस अवधि में बहुत सूक्ष्मता से भारत का अध्ययन किया जो उनके भाषणों में व्यक्त होता था। वे धर्म को भारत का प्राण–तत्त्व मानते थे। कन्याकुमारी में श्रीपाद शिला पर तीन दिन और तीन रात तक ध्यानावस्था में उन्हें भारत का साक्षात्कार हुआ।

11 सितम्बर, 1893 में, अमेरिका के शिकागो में आयोजित विश्व–धर्म–सम्मेलन में विवेकानंद जी हिन्दू–धर्म के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए और वहाँ उनकी ओजस्वी वाणी का इतना प्रभाव हुआ कि विश्वभर में भारत के प्रति दुनिया की दृष्टि ही बदल गई। वे कई महीनों तक विदेशों में रहकर भारतीय संस्कृति और समसामयिक वैश्विक परिदृश्य पर भाषण देते रहे। भारत लौटने पर आसेतु–हिमाचल उनका भव्य अभिनंदन हुआ। परतंत्र और दुखी भारतीय जन समाज को उनमें अपना उद्घाटक दिखाई दिया। उनके भाषणों में आधुनिक भारत के अभ्युदय के सभी बीजमंत्र विद्यमान हैं। उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और संन्यासियों के नव कर्तव्यों का प्रतिपादन किया। उनसे प्रेरणा लेकर अनेक साहित्यकारों ने अपने लेखन का परिष्कार किया। प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार शरत्चन्द्र उनके शिष्य थे। वे संस्कृत भाषा की पुनर्प्रतिष्ठा के पक्षधर थे। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक भारत के राष्ट्र–नायक थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में ''यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़िए। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पायेंगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।''

पाठ परिचय

यह पाठ स्वामी विवेकानन्द के एक साक्षात्कार के अंश से है जो प्रबुद्ध भारत समाचार पत्र में, दिसम्बर 1898 के अंक में प्रकाशित हुआ था। पाठ हमें एकनाथ रानाडे के संकलन से प्राप्त हुआ, जो उन्होंने सन् 1963 में प्रकाशित करवाया था। पत्रकार के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने भारतीय नारी के उद्धार के संबंध में भारतीय दृष्टि का संकेत किया है, जो आधुनिक और प्रगतिशील होने के साथ–साथ पश्चिम के अंधानुकरण पर चल रहे नारी–आंदोलनों के प्रति चेतावनी भी है।

साक्षात्कार में में स्वामी विवेकानन्द का संदेश स्पष्ट है, ''भारत और भारतीयता में विश्वास रखो। तेजस्वी बनो। मौलिकता को क्षति पहुँचाए बिना, देशोद्धार के कार्य में जुट जाओ।'' उनके

विचारों में प्राचीन भारतीय आदर्शों की, आधुनिक व्याख्या चमत्कृत करने वाली है। पाठ का उत्तरार्ध, उनके न्यूयार्क के एक भाषण से उद्धृत है।

मूल पाठ

आखिर एक रविवार को बड़े सवेरे ही मैं सम्पादक महोदय का आदेश पालन करने में समर्थ हुआ। भारतीय नारियों की अवस्था और उनके भविष्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का मतामत जानने के लिए मैंने उनसे हिमालय की एक सुन्दर उपत्यका में भेंट की।

मैंने जब स्वामीजी को अपने आने का उद्देश्य बतलाया तो वे बोले, ''चलो थोड़ा टहल आयें।'' हम लोग उसी समय बाहर निकल पड़े। अहा! कैसा मनोहर दृश्य था। ऐसा दृश्य संसार में शायद ही हो।

कहीं धूप और कहीं छाया से ढँके मार्गों को काटते हुए हम शान्तिपूर्ण ग्रामों में चले जा रहे थे। कहीं ग्रामीण बच्चे आनन्द से खेलकूद कर रहे थे, और कहीं चारों ओर सुनहले खेत लहलहा रहे थे। ऊँचे–ऊँचे वृक्ष ऐसे दीखते थे, मानो वे नीलगगन को पार कर उसके परे चले जाना चाहते हों। खेतों में कहीं पर कुछ कृषक–बालाएँ हाथों में हँसिया लिए शीत ऋतु के लिए बाजरे के भुट्टे काटकर इकट्ठा कर रही थीं, तो अन्य कहीं सेवों की एक सुन्दर वाटिका दिखाई देती थी, जिसमें वृक्षों के नीचे लाल फलों के ढेर बड़े ही सुहावने लगते थे। फिर कुछ क्षण बाद ही हम खुले मैदान में आ गए और हमारे सामने हिमाच्छादित शुभ्र शिखर, अग्रमाला को चीरकर, अद्भुत सौन्दर्य के साथ विराजमान् थे।

अन्त में स्वामीजी ने मौन भंग करते हुए कहा, ''आर्यों और सेमेटिक लोगों के नारी–सम्बंधी आदर्श सदैव एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत रहे हैं। सेमेटिक लोग स्त्रियों की उपस्थिति को उपासना–विधि में घोर विघ्नस्वरूप मानते हैं। उनके अनुसार स्त्रियों को किसी प्रकार के धर्म–कर्म का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि आहार के लिए पक्षी मारना भी उनके लिए निषिद्ध है। आर्यों के अनुसार तो सहधर्मिणी के बिना पुरुष कोई धार्मिक कार्य नहीं कर सकता।

ऐसी अप्रत्याशित और स्पष्ट बात से मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। मैंने पूछा, ''किन्तु स्वामीजी, क्या हिन्दू-धर्म आर्य-धर्म का अंग विशेष नहीं है ?

स्वामीजी ने शान्त स्वर में कहा, ''आधुनिक हिन्दू धर्म अधिकांशतः एक पौराणिक धर्म है, जिसका उद्गम बौद्धकाल के पश्चात हुआ है। दयानन्द सरस्वती ने यह दर्शाया कि यद्यपि गार्हपत्य अग्नि में आहुति प्रदान करने की जो वैदिक क्रिया है, उसके अनुष्ठान में सहधर्मिणी की उपस्थिति नितांत अनिवार्य है, पर तो भी वह शालग्रामशिला अथवा गृह–देवता की मूर्ति को स्पर्श नहीं कर सकती; क्योंकि इस प्रकार की पूजा का प्रचलन पौराणिक काल के उत्तरार्ध से हुआ है।''

''अतः, आपके अनुसार हमारे देश में पाया जाने वाला स्त्री–पुरुष के अधिकारों का भेद पूर्णतः बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण है ?''

हाँ! जहाँ कहीं भी यह भेद पाया जाता है, वहाँ तो मैं ऐसा ही सोचता हूँ। पाश्चात्य आलोचना की आकस्मिक बाढ़ से प्रभावित होकर और पाश्चात्य नारियों की तुलना में अपने देश की नारियों की अवस्था भिन्न देखकर हम भारत में नारी के प्रति असमानता के उनके आरोप को

चुपचाप स्वीकार न कर लें। विगत कई सदियों से भारत में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण होता रहा है, जिससे हम स्त्रियों का विशेष संरक्षण करने को बाध्य हुए हैं। इस एक तथ्य के, न कि स्त्री जाति के प्रति हीन दृष्टि के मिथ्या आरोप के प्रकाश में हम अपनी प्रथाओं के यथार्थ स्वरूप को समझ सकेंगे।

''स्वामीजी, तो क्या आप भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा से पूर्णतः संतुष्ट हैं ?''

''कदापि नहीं। पर स्त्रियों के सम्बंध में हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार बस उनको शिक्षा देने तक ही सीमित रहना चाहिए। उनमें ऐसी योग्यता ला देनी होगी जिससे वे अपनी समस्याओं को स्वयं ही अपने ढंग से सुलझा सकें। अन्य कोई उनके लिए यह कार्य नहीं कर सकता, और करने का प्रयत्न भी उचित नहीं है। हमारी भारतीय स्त्रियाँ अपनी समस्याओं को हल करने में संसार के किसी भी भाग की स्त्रियों से पीछे नहीं हैं।''

'' स्वामीजी, क्या आप बतलाएँगे कि हमारे देश में बौद्धधर्म के द्वारा यह दोष किस प्रकार पैदा हुआ जिसका अभी आपने उल्लेख किया ?''

''इस दोष का जन्म बौद्धधर्म के पतन–काल में हुआ। प्रत्येक आन्दोलन किसी असाधारण विशेषता के कारण ही संसार में सफलता प्राप्त कर सकता है, पर जब उसका पतन होता है, तब उसकी यह अभिमानास्पद विशेषता ही उसकी दुर्बलता का एक मुख्य उपादान बन जाती है। नर श्रेष्ठ भगवान् बुद्ध में संगठन करने की अद्भुत शक्ति थी, और इसी शक्ति के बल पर उन्होंने संसार को अपना अनुगामी बनाया था। किंतु, उनका धर्म केवल संन्यासियों के लिए ही उपयोगी था। अतः, उसका एक कुफल यह हुआ कि संन्यासी की वेश–भूषा तक सम्मानित होने लगी। फिर उन्होंने सर्वप्रथम मठ–प्रथा अर्थात् धर्म–संघ में रहने की प्रथा का प्रवर्तन किया। इसके लिए उन्हें बाध्य होकर स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्थान देना पड़ा; क्योंकि प्रमुख भिक्षुणियाँ कुछ विशिष्ट मठ–अध्यक्षों की अनुमति के बिना किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ नहीं डाल सकती थीं। इससे उनके तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति तो अवश्य हुई, अर्थात् उनके धर्म–संघ की एकसूत्रता बनी रही, किन्तु उसके दूरगामी परिणाम अनिष्ट हुए।''

''परन्तु स्वामीजी, संन्यास धर्म तो वेदविहित है।''

''अवश्य, संन्यास वेद–प्रतिपादित है, पर वहाँ स्त्री–पुरुष का कोई भेद नहीं किया गया है। क्या तुम्हें स्मरण है कि विदेहराज जनक की राजसभा में किस प्रकार धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर महर्षि याज्ञवल्क्य से वाद–विवाद हुआ था ? इस वाद–विवाद में ब्रह्मवादिनी (गार्गी) ने प्रधान भाग लिया था। उसने कहा था, ''मेरे दो प्रश्न मानो कुशल धनुर्धारी के हाथ में दो तीक्ष्ण बाण हैं।'' वहाँ पर उसके स्त्री होने के सम्बन्ध में कोई प्रसंग तक नहीं उठाया गया है। तुम्हें विदित ही होगा कि प्राचीन गुरुकुलों में बालक और बालिकाएँ समान रूप से शिक्षा ग्रहण करती थीं। इससे अधिक साम्यभाव और क्या हो सकता है ? हमारे संस्कृत नाटकों को पढ़कर देखो ? शकुन्तला का आख्यान पढ़ो, और फिर देखो, टेनिसन की 'राजकुमारी' में हमारे लिए क्या कोई नई शिक्षाप्रद बात प्राप्त हो सकती है ?''

'' स्वामीजी! आपमें हमारी अतीत–गौरव–गरिमा को इतने सुन्दर ढंग से प्रकट करने की बड़ी अद्भुत क्षमता है।''

स्वामीजी शान्तिपूर्वक बोले, ''सम्भव है, इसका कारण यह हो कि मैंने पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया, चाहे वह उसकी कल्पना ही क्यों न हो, उस जाति में स्त्री–जाति के लिए इतना अधिक सम्मान और श्रद्धा है, जिसकी तुलना संसार में हो ही नहीं सकती। पाश्चात्य स्त्रियाँ ऐसे कई कानूनी बंधनों में जकड़ी हुई हैं, जिनसे भारतीय स्त्रियाँ सर्वथा मुक्त एवं अपरिचित हैं। भारतीय समाज में निश्चय ही दोष और अपवाद दोनों हैं, पर यही स्थिति पाश्चात्य समाजों की भी है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि संसार के सभी भागों में प्रीति, कोमलता और साधुता को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न चल रहे हैं, और विभिन्न जातीय प्रथाएँ इन्हीं को यथासम्भव प्रकट करने की प्रणाली मात्र हैं। जहाँ तक गृहस्थ धर्म का संबंध है, मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि भारतीय प्रणाली में अन्य देशों की अपेक्षा अनेक सद्‌गुण विद्‌यमान हैं।''

'' स्वामीजी, तो क्या भारतीय स्त्री–जीवन के सम्बंध में हम इतने संतुष्ट हैं कि हमारे समक्ष उसकी कोई भी समस्याएँ नहीं हैं ?''

''क्यों नहीं, बहुत–सी समस्याएँ हैं – और ये समस्याएँ बड़ी गम्भीर हैं; परन्तु इनमें से कोई ऐसी नहीं है, जो 'शिक्षा' के द्‌वारा हल न हो सके। पर हाँ, शिक्षा की सच्ची कल्पना हममें से कदाचित् ही किसी को हो।''

''स्वामीजी, शिक्षा की आप क्या परिभाषा देते हैं ?''

स्वामीजी ने स्मित–हास्य से कहा, ''मैं परिभाषाएँ देने के विरुद्‌ध हूँ। पर इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि सच्ची शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास हो। वह केवल शब्दों का रटना मात्र नहीं है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ है – व्यक्ति में योग्य कर्म की आकांक्षा एवं उसको कुशलतापूर्वक करने की पात्रता उत्पन्न करना। हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाये, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्त्तव्य को भली–भाँति निभा सकें और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई तथा मीराबाई आदि भारत की महान् देवियों द्वारा चलाई गई परम्परा को आगे बढ़ा सकें एवं वीर प्रसूता बन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्र और त्यागमूर्ति हैं; क्योंकि उनके पास वह बल और शक्ति है, जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा के चरणों में सर्वस्वार्पण करने से प्राप्त होता है।''

'' स्वामीजी, इससे प्रतीत होता है कि आपके विचारानुसार शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का भी समावेश होना चाहिए।''

स्वामीजी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, ''मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि धर्म शिक्षा का मेरुदण्ड ही है। हाँ, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यहाँ धर्म से मेरा मतलब मेरा, तुम्हारा या अन्य किसी का उपासना–मत नहीं है। मेरे मत से, अन्य विषयों के समान इस संबंध में भी शिक्षक को छात्र के भाव और धारणा के अनुसार शिक्षा देना प्रारम्भ करना चाहिए तथा उसे उन्नत करने के लिए ऐसा सहज पथ दिखा देना चाहिए, उसे सबसे कम बाधाओं का सामना करना पड़े।''

''क्या ब्रह्मचर्य–पालन को अत्यधिक धार्मिक महत्त्व देने का अर्थ मातृत्व और पत्नीत्व को समाज में उनके सर्वोच्च स्थान से वंचित कर, वहाँ उस स्त्रीवर्ग को प्रतिष्ठित करना नहीं है, जो पवित्र दायित्वों से परे रहती हैं ?

''तुम्हें स्मरण रहना चाहिए कि हमारे धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ब्रह्मचर्य की महिमा समान रूप से बतायी गई है। तुम्हारे प्रश्न से यह भी ज्ञात होता है कि तुम्हारे मन में कुछ भ्रम फैला हुआ है। हिन्दू धर्म में मानवात्मा का केवल एक ही कर्तव्य बतलाया गया है और वह है इस अनित्य और नश्वर जगत् में नित्य एवं शाश्वत पद की प्राप्ति। उसकी प्राप्ति के लिए कोई एक ही बँधा हुआ मार्ग नहीं है। विवाह हो या ब्रह्मचर्य, पाप हो या पुण्य, ज्ञान हो या अज्ञान–इनमें से प्रत्येक की सार्थकता हो सकती है, यदि वह इस चरम लक्ष्य की ओर ले जाने में सहायता करे। बस यहीं पर हिन्दू धर्म और बौद्धधर्म में महान् अन्तर है; क्योंकि बौद्ध धर्म में जीवन का प्रधान लक्ष्य और वह भी मोटे तौर पर केवल एक ही मार्ग से बाह्य जगत् की क्षणिकता का अनुभव कर लेना मात्र है। क्या तुम्हें महाभारत में वर्णित उस युवक योगी का वृत्तांत विदित है, जिसने अपने क्रोध से उत्पन्न अपनी प्रबल मानसिक शक्ति के प्रभाव से एक कौए और बगुले को भस्म कर यौगिक शक्तियों के प्रदर्शन में धन्यता मानी थी ? क्या तुम्हें स्मरण है कि एक दिन यही योगी किसी नगर में पहुँचकर देखता है कि एक स्त्री अपने रोगी पति की सेवा–सुश्रुषा में निरत है, तथा एक धर्म नामक कसाई माँ को बेच रहा है, परन्तु इन दोनों ने अपने कर्तव्य का पूरा–पूरा पालन करके पूर्ण ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया था ?''

''तो स्वामीजी, आपका इस देश की स्त्रियों के लिए क्या सन्देश है ?''

''वही, जो पुरुषों के लिए है। भारत और भारतीय धर्म के प्रति विश्वास और श्रद्धा रखो। तेजस्विनी बनो, हृदय में उत्साह भरो, भारत में जन्म लेने के कारण लज्जित न हो, वरन् उसमें गौरव का अनुभव करो और स्मरण रखो कि यद्यपि हमें दूसरे देशों से कुछ लेना अवश्य है, पर हमारे पास दुनिया को देने के लिए दूसरे की अपेक्षा सहस्रगुना अधिक है।''

भारतीय और पाश्चात्य नारी

न्यूयार्क में भाषण देते हुए एक समय स्वामी विवेकानंदजी ने कहा था – ''मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि भारतीय स्त्रियों की ऐसी ही बौद्धिक प्रगति हो, जैसी इस देश में हुई है; परन्तु वह उन्नति तभी अभीष्ट है, जब वह उनके पवित्र जीवन और सतीत्व को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए हो। मैं अमेरिका की स्त्रियों के ज्ञान और विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा करता हूँ, परन्तु मुझे यह अनुचित दिखता है कि आप बुराइयों को भलाइयों का रंग देकर छिपाने का प्रयत्न करें। बौद्धिक विकास से ही मानव का परम कल्याण सिद्ध नहीं हो सकता। भारत में नीतिमत्ता और आध्यात्मिक उन्नति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है, और हम उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। यद्यपि भारतीय स्त्रियाँ उतनी शिक्षा सम्पन्न नहीं हैं, तथापि उनका आचार–विचार अधिक पवित्र होता है। प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषों को पुत्रवत् समझे।

प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि वह अपनी पत्नी के अतिरिक्त सभी स्त्रियों को मातृवत् समझे। जब मैं इस आचरण को, जिसे आप नारी–सम्मान का भाव कहते हो, अपने चारों ओर देखता हूँ तब मेरा हृदय क्षोभ से भर जाता है। जब तक आप स्त्री–पुरुष के भेद को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति

में मानवता का दर्शन नहीं करते, तब तक इस देश की स्त्रियों की यथार्थ उन्नति नहीं हो सकती। इस दशा को प्राप्त किये बिना तो आपकी स्त्रियाँ खिलौने से अधिक और कुछ भी नहीं हैं, और इसी कारण यहाँ इतने विवाह–विच्छेद होते हैं। यहाँ के पुरुष स्त्रियों के सम्मुख झुकते और उन्हें आसन प्रदान करते हैं; परन्तु एक क्षण के उपरांत वे उनकी चापलूसी करने लगते हैं; वे उनके नख–शिख सौंदर्य की प्रशंसा करना आरंभ कर देते हैं। आपको ऐसा करने का क्या अधिकार है ? कोई पुरुष इतनी दूर तक जाने का साहस ही कैसे कर पाता है ? और यहाँ की स्त्रियाँ उसको सहन भी कैसे कर लेती हैं ? इस प्रकार के आचरण से मनुष्य में निम्नतर भावों का उद्रेक होता है, उससे उच्च आदर्श की प्राप्ति सम्भव नहीं।

हमें स्त्री–पुरुष के भेद का विचार मन में नहीं रखना चाहिए, केवल यही चिन्तन करना चाहिए कि हम सभी मानव हैं और परस्पर एक–दूसरे के प्रति सद्व्यवहार और सहायता करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। हम यहाँ देखते हैं कि 'यों ही किसी नवयुवक और नवयुवती को अकेले होने का अवसर मिला, त्यों ही वह नवयुवक उस नवयुवती के रूप–लावण्य की प्रशंसा आरंभ कर देता है, और किसी स्त्री को विधिवत् पत्नी रूप में अंगीकार करने से पूर्व ही वह दो सौ स्त्रियों से प्रेमाचार कर चुका होता है। मैं यदि इन विवाहेच्छुकों में से एक होता, तो बिना किसी आडंबर के ही किसी का प्रिय पात्र बन जाता।

जब मैं भारतवर्ष में था और इन चीजों को केवल दूर से देखता–सुनता था, तब मुझे बताया गया कि उनमें कोई दोष नहीं है, यह केवल मनोविनोद है। उस समय मैंने उस पर विश्वास कर लिया था। तब से अब तक मुझे बहुत यात्रा करने का अवसर आया है, और मेरा दृढ़–विश्वास हो गया है कि यह अनुचित है, यह अत्यंत दोषपूर्ण है। केवल आप पाश्चात्यवासी ही अपनी आँख बन्दकर इसे निर्दोष कहते हैं। पाश्चात्य राष्ट्रों का अभी यौवन है, साथ–ही–साथ वे अनभिज्ञ, चंचल और धनवान् हैं। जब इन गुणों में से किसी एक के प्रभाव में ही मनुष्य कितना क्या अनर्थ कर डालता है तब यहाँ ये तीनों चारों एकत्र हों वहाँ कितना भीषण अनर्थ हो सकता है? वहाँ को तो फिर कहना ही क्या। अतः सावधान!

•••

शब्दार्थ

उपत्यका–पर्वत के पास की भूमि, तराई/ हिमाच्छादित–बर्फ से ढका हुआ/ सेमेटिक–मनुष्यों का वह आधुनिक वर्ग जिसमें यहूदी, अरब, मिस्री आदि जातियाँ हैं/ अप्रत्याशित–अकस्मात होने वाला/ उपादान–वह कारण जो स्वयं कार्य रूप में परिणित हो जाय/ अनुगामी–अनुसरण करने वाला/ अनिष्ट–अमंगल, हानि/ नश्वर–नष्ट हो जाने वाला/ सतीत्व–पातिव्रत्य/ नीतिमत्ता–नीति पारायणता/ मातृवत्–माँ के समान/ अनभिज्ञ–अपरिचित।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वेदविहित से तात्पर्य है –

(क) वेद विरुद्ध (ख) वेद के अनुसार

(ग) वेद द्वारा निर्धारित (घ) वेद निरपेक्ष ( )

2. 'संघमित्रा' कौन थी ?

(क) वेदकालीन एक विदुषी (ख) सम्राट अशोक की पुत्री

(ग) गौतम–बुद्ध की पुत्री (घ) कनिष्क की पत्नी ( )

उत्तरमाला– (1) ग (2) ख

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. याज्ञवल्क्य से वाद–विवाद करने वाली नारी कौन थी ?
2. बौद्ध धर्म का प्रधान लक्ष्य क्या बताया गया है ?
3. परस्त्री के स्थूल सौंदर्य की प्रशंसा करने में कैसे भावों का उद्रेक होता है ?
4. 'शकुन्तला' आख्यान पर किस संस्कृत कवि ने नाटक लिखा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आर्यों और सेमेटिक लोगों के नारी संबंधी आदर्शों में क्या अंतर रहा है ?
2. स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा की क्या परिभाषा दी ?
3. किन गुणों के समुच्चय से मनुष्य अनर्थ कर डालता है ?
4. स्वामीजी का स्त्रियों के लिए क्या संदेश है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रह्मचर्य की महिमा पर एक आलेख लिखिए।
2. स्वामी विवेकानंद के अनुसार भारतीय नारी में कौन–कौन से सद्गुण विद्यमान हैं ?
3. ''प्रत्येक पुरुष अन्य स्त्री को मातृवत् समझे।'' इस कथन के पीछे का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
4. पाश्चात्य नारी की स्वतंत्रता से उत्पन्न अच्छी और बुरी बातों को समझाइए।

•••

यह भी जानें

विसर्ग (2)

(क) निःस्वार्थ मान्य है। (निस्स्वार्थ उचित नहीं होगा)।

(ख) निस्तेज, निर्वचन, निश्चल आदि शब्दों में विसर्ग वाला रूप (निःतेज, निःवचन, निःचल) न लिखा जाए।

(ग) अंतःकरण, अंतःपुर, दुःस्वप्न, निःसंतान, प्रातःकाल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।

(घ) तद्भव/देशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छः लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।

(ङ) प्रायद्वीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।

(च) विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम :) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे – अतः, यों है :–

•••

15. गद्य साहित्य का आविर्भाव

• आचार्य रामचंद्र शुक्ल

लेखक परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 में अगौना ग्राम में हुआ। हिंदी–आलोचना के आधार–स्तंभ, आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी है। वे एक साथ ही साहित्येतिहासकार, मूर्धन्य हिंदी–काव्यशास्त्री, श्रेष्ठ पाठालोचक तथा उच्चकोटि के निबंधकार हैं। यही नहीं वे वरेण्य कवि–साहित्यकार के समानांतर प्रामाणिक अनुवादक भी हैं।

जब काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग खुला तब महामना मालवीय जी ने बाबू श्यामसुंदर दास को उस विभाग का अध्यक्ष बनाया तथा आचार्य शुक्ल को प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया। शुक्ल जी कम आयु में ही पुस्तकें लिखने लगे थे, आर्थिक कठिनाई के कारण जो पुस्तक वे लिखते थे उसे नागरी प्रचारिणी सभा को एक ही बार द्रव्य लेकर दे देते थे।

यद्यपि शुक्ल जी की शिक्षा इंटर तक ही हुई थी किंतु वे महान प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उनके समान समालोचक, निबंधकार तथा गद्य लेखक दुर्लभ है। उनकी तुलसी, जायसी तथा सूर की समालोचना, हिंदी साहित्य का इतिहास तथा चिंतामणि में संगृहीत उनके निबन्ध अप्रतिम हैं। आचार्य जी मुख्यतः गद्य के महान लेखक थे। किन्तु उन्होंने 'लाइट ऑफ एशिया' नामक पुस्तक का ब्रजभाषा में अनुवाद करके 'बुद्धचरित' जैसी महान कृति का सृजन किया। उन्होंने बंगला भाषा के ऐतिहासिक उपन्यास 'शशांक' का हिंदी में अनुवाद किया।

पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ आचार्य शुक्ल की कृति 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के आधुनिक काल (सं० 1900 से 1970) के द्वितीय प्रकरण 'गद्य साहित्य का आविर्भाव' से लिया गया है। गद्य साहित्य लेखन के उस संक्रमण काल की परिस्थितियों के प्रति आचार्य शुक्ल की सूक्ष्म दृष्टि का ज्ञान होने के साथ–साथ तत्कालीन साहित्यिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। पाठ में उस समय की शिक्षोपयोगी पुस्तकें, राजा शिवप्रसाद की भाषा, राजा लक्ष्मण सिंह के अनुवादों की भाषा, फ्रेडरिक पिंकाट का हिंदी प्रेम, बाबू नवीनचन्द राय की हिंदी सेवा, हिंदी गद्य प्रसार में आर्य समाज का योगदान, पंडित श्रद्धाराम की हिंदी सेवा आदि की जानकारी समेटने का प्रयत्न हुआ है। भारतेंदु से पूर्व हिंदी गद्य की दिशा तय होने के साथ गद्य भाषा के स्वरूप निर्माण पर रोचक शैली में प्रकाश डाला गया है। इस काल–खंड को गद्य साहित्य की प्रसव पीड़ा के काल के रूप में जाना जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने यहाँ एक चेतावनी भी दे डाली है कि भारतीय भाषाओं को संस्कृत के दूर करना और विदेशी शब्दों की घुसपैठ स्वस्थ परंपरा नहीं है।

मूल पाठ

किस प्रकार हिंदी के नाम से नागरी अक्षरों में उर्दू ही लिखी जाने लगी थी, इसकी चर्चा 'बनारस अखबार' के संबंध में कर आए हैं। संवत् 1913 में अर्थात् बलवे के एक वर्ष पहले राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। उस समय और दूसरे विभागों के समान शिक्षाविभाग में भी कुछ लोगों के मन में 'भाषापन' का डर बराबर समाया रहता था। वे इस बात

से डरा करते थे कि कहीं नौकरी के लिये 'भाखा' संस्कृत से लगाव रखनेवाली 'हिंदी' न सीखनी पड़े। अतः उन्होंने पहले तो उर्दू के अतिरिक्त हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि जब अदालती कामों में उर्दू ही काम में लाई जाती है तब एक और जबान का बोझ डालने से क्या लाभ ? 'भाखा' में हिंदुओं की कथावार्त्ता आदि कहते सुन वे हिंदी को 'गँवारी' बोली भी कहा करते थे। इस परिस्थिति में राजा शिवप्रसाद को हिंदी की रक्षा के लिये बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हिंदी का सवाल जब आता तब कुछ लोग उसे 'मुश्किल जबान' कहकर विरोध करते। अतः राजा साहब के लिये उस समय यही संभव दिखाई पड़ा कि जहाँ तक हो सके ठेठ हिंदी का आश्रय लिया जाय जिसमें कुछ फारसी अरबी के चलते शब्द भी आएँ। उस समय साहित्य के कोर्स के लिए पुस्तकें नहीं थीं। राजा साहब स्वयं तो पुस्तकें तैयार करने में लग ही गए, पंडित श्रीलाल और पंडित वंशीधर आदि अपने कई मित्रों को भी उन्होंने पुस्तकें लिखने में लगाया। राजा साहब ने पाठ्यक्रम में उपयोगी कई कहानियाँ आदि लिखीं – जैसे राजा भोज का सपना, वीरसिंह का वृत्तांत, आलसियों का कीड़ा इत्यादि।

पं. बद्रीलाल ने डाक्टर बैलेटाइन के परामर्श के अनुसार सं. 1919 में 'हितोपदेश' का अनुवाद किया जिसमें बहुत सी कथाएँ छाँट दी गई थीं। उसी वर्ष सिद्धांतसंग्रह (न्यायशास्त्र और 'उपदेश पुष्पावती') नाम की दो पुस्तकें निकली थीं।

'मानवधर्मसार' की भाषा राजा शिवप्रसाद की स्वीकृत भाषा नहीं। प्रारंभ काल से ही वे ऐसी चलती ठेठ हिंदी के पक्षपाती थे जिसमें सर्वसाधारण के बीच प्रचलित अरबी फारसी शब्दों का भी स्वच्छंद प्रयोग हो। यद्यपि अपने 'गुटका' में जो साहित्य की पाठ्यपुस्तक थी उन्होंने थोड़ी संस्कृत मिली ठेठ और सरल भाषा का ही आदर्श बनाए रखा, पर संवत् 1917 के पीछे उनका झुकाव उर्दू की ओर होने लगा जो बराबर बना क्या रहा, कुछ न कुछ बढ़ता ही गया। इसका कारण चाहे जो समझिए। या तो यह कहिए कि अधिकांश शिक्षित लोगों की प्रवृत्ति देखकर उन्होंने ऐसा किया अथवा अंगरेज अधिकारियों का रुख देखकर। अधिकतर लोग शायद पिछले कारण को ही ठीक समझेंगे। जो हो, संवत् 1917 के उपरांत जो इतिहास, भूगोल आदि की पुस्तकें राजा साहब ने लिखीं उनकी भाषा बिलकुल उर्दूपन लिए हैं।

राजा साहब ने अपने इस उर्दू वाले पिछले सिद्धांत का 'भाषा का इतिहास' नामक जिस लेख में निरूपण किया है, वही उनकी उस समय की भाषा का एक खास उदाहरण है, अतः उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है –

''हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए कि जो आम फहम और खासपसंद हों अर्थात् जिनको जियादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहाँ के पढ़े–लिखे, आलिमफाजिल, पंडित, विद्वान् की बोलचाल में छोड़े नहीं गए हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगों को हर्गिज गैरमुल्क के शब्द काम में न लाने चाहिए और न संस्कृत की टकसाल कायम करके नए–नए ऊपरी शब्दों के सिक्के जारी करने चाहिए; जब तक कि हम लोगों को उसके जारी करने की जरूरत न साबित हो जाय अर्थात् यह कि उस अर्थ का कोई शब्द हमारी जबान में नहीं है, या जो है अच्छा नहीं

है, या कविताई की जरूरत या इल्मी जरूरत या कोई और खास जरूरत साबित हो जाय।''

भाषा संबंधी जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन राजा साहब ने किया है उसके अनुकूल उनकी यह भाषा कहाँ तक ठीक है, पाठक आप समझ सकते हैं। 'आमफहम', 'खासपसंद', 'इल्मी जरूरत' जनता के बीच प्रचलित शब्द कदापि नहीं है। फारसी के 'आलिमफाजिल' चाहे ऐसे शब्द बोलते हों पर संस्कृत हिंदी के पंडित विद्वान् तो ऐसे शब्दों से कोसों दूर हैं। किसी देश के साहित्य का संबंध उस देश की संस्कृति परंपरा से होता है। अतः साहित्य की भाषा उस संस्कृति का त्याग करके नहीं चल सकती। भाषा में जो रोचकता या शब्दों में जो सौंदर्य का भाव रहता है वह देश की प्रकृति के अनुसार होता है। इस प्रवृत्ति के निर्माण में जिस प्रकार देश के प्राकृतिक रूप रंग, आचार व्यवहार आदि का योग रहता है उसी प्रकार परंपरा से चले आते हुए साहित्य का भी। संस्कृत शब्दों में थोड़े बहुत मेल से भाषा का जो रुचिकर रूप हजारों वर्षों से चला आता था उसके स्थान पर एक विदेशी रूपरंग की भाषा गले में उतारना देश की प्रकृति के विरुद्ध था। यह प्रकृति विरुद्ध भाषा खटकी तो बहुत लोगों को होगी, पर असली हिंदी का नमूना लेकर उस समय राजा लक्ष्मणसिंह ही आगे बढ़े। उन्होंने संवत् 1918 में 'प्रजाहितैषी' नाम का एक पत्र आगरे से निकाला और 1919 में 'अभिज्ञानशाकुंतल' का अनुवाद बहुत ही सरल और विशुद्ध हिंदी में प्रकाशित किया। इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा हुई और भाषा के संबंध में मानो फिर से लोगों की आँखें खुलीं। राजा साहब ने उस समय इस प्रकार की भाषा जनता के सामने रखी –

''अनसूया – (हौले प्रियंवदा से) सखी! मैं भी इसी सोच विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूँगी। (प्रगट) महात्मा! तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो ? क्या कारन है ? जिससे तुमने अपने कोमल गात को कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है ?''

यह भाषा ठेठ और सरल होते हुए भी साहित्य में चिरकाल से व्यवहृत संस्कृत के कुछ रसिक शब्द लिए हुए है। 'रघुवंश' के गद्यानुवाद के प्राक्कथन में राजा लक्ष्मणसिंह जी ने भाषा के संबंध में अपना मत स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है।

हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं उर्दू में अरबी पारसी के। परंतु कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी पारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी, पारसी के शब्द भरे हों।

अब भारत की देशभाषाओं के अध्ययन की ओर इंग्लैंड के लोगों का भी ध्यान अच्छी तरह जा चुका है। उनमें जो अध्ययनशील और विवेकी थे, जो अखंड भारतीय साहित्य परंपरा और भाषा परंपरा से अभिज्ञ हो गए थे, उन पर अच्छी तरह प्रकट हो गया था कि उत्तरीय भारत की असली स्वाभाविक भाषा का स्वरूप क्या है। इन अँगरेज विद्वानों में फ्रेडरिक पिंकाट का स्मरण हिंदी प्रेमियों को सदा बनाए रखना चाहिए। इनका जन्म संवत् 1893 में इंग्लैंड में हुआ। उन्होंने प्रेस के कामों का बहुत अच्छा अनुभव प्राप्त किया और अंत में लंदन की प्रसिद्ध एलन ऐंड कंपनी (W.H.

Allen and Co. 13 Waterloo place, pall Mall, S.W.) के विशाल छापेखाने के मैनेजर हुए। वहीं वे अपने जीवन के अंतिम दिनों के कुछ पहले तक शांतिपूर्वक रहकर भारतीय साहित्य और भारतीय जनहित के लिए बराबर उद्योग करते रहे।

संस्कृत की चर्चा पिंकाट साहब लड़कपन से ही सुनते आते थे, इससे उन्होंने बहुत परिश्रम के साथ उसका अध्ययन किया। इसके उपरांत उन्होंने हिंदी और उर्दू का अभ्यास किया। इंगलैंड में बैठे ही बैठे उन्होंने इन दोनों भाषाओं पर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया कि इनमें लेख और पुस्तकें लिखने और अपने प्रेस में छापने लगे। यद्यपि उन्होंने उर्दू का भी अच्छा अभ्यास किया था, पर उन्हें इस बात का अच्छी तरह निश्चय हो गया था कि यहाँ की परंपरागत प्राकृत भाषा हिंदी है, अतः जीवन भर ये उसी की सेवा और हितसाधना में तत्पर रहे। उनके हिंदी लेखों, कविताओं और पुस्तकों की चर्चा आगे चलकर भारतेंदु काल के भीतर की जाएगी।

संवत् 1947 में उन्होंने उपर्युक्त ऐलन कंपनी से संबंध तोड़ा और गिलबर्ट ऐंड रिबिंगटन (Gillbert and Rivington Clerkenwell Londan) नामक विख्यात व्यवसाय कार्यालय में पूर्वीय मंत्री (Orient Adviser and Expert) नियुक्त हुए। उक्त कंपनी की ओर से एक व्यापारपत्र 'आईन सौदागरी' उर्दू में निकलता था जिसका संपादन पिंकाट साहब करते थे। उन्होंने उसमें कुछ पृष्ठ हिंदी के लिए भी रखे। कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदी के लेख वे ही लिखते थे। लेखों के अतिरिक्त हिंदुस्तान में प्रकाशित होने वाले हिंदी समाचार पत्रों (जैसे हिंदोस्तान, आर्यदर्पण, भारतमित्र) से उद्धरण भी उस पत्र के हिंदी विभाग में रहते थे।

भारत का हित वे सच्चे हृदय से चाहते थे। राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, कार्तिकप्रसाद खत्री इत्यादि हिंदी लेखकों से उनका बराबर हिंदी में पत्रव्यवहार रहता था। उस समय के प्रत्येक हिंदी लेखक के घर में पिंकाट साहब के दो चार पत्र मिलेंगे। हिंदी के लेखकों और ग्रंथकारों का परिचय इंगलैंडवालों को वहाँ के पत्रों में लेख लिखकर वे बराबर दिया करते थे। संवत् 1957 (नवंबर सन् 1895) में वे रीआ घास (जिसके रेशों से अच्छे कपड़े बनते थे) की खेती का प्रचार करने हिंदुस्तान में आए, पर साल भर से कुछ ऊपर ही यहाँ रह पाए थे कि लखनऊ में उनका देहांत (7 फरवरी, 1896) हो गया। उनका शरीर भारत की मिट्टी में ही मिला।

संवत् 1919 में जब राजा लक्ष्मण सिंह ने 'शकुंतला नाटक' लिखा तब उसकी भाषा देख वे बहुत ही प्रसन्न हुए और उनका एक बहुत सुंदर परिचय उन्होंने लिखा। बात यह थी कि यहाँ के निवासियों पर विदेशी प्रकृति और रूपरंग की भाषा का लादा जाना वे बहुत अनुचित समझते थे। अपना यह विचार उन्होंने अपने उस अँगरेजी लेख में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है जो उन्होंने बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' की भूमिका के रूप में लिखा था। देखिए, उसमें वे क्या कहते हैं –

फारसी मिश्रित हिंदी (अर्थात् उर्दू या हिंदुस्तानी) के अदालती भाषा बनाए जाने के कारण उनकी बड़ी उन्नति हुई। इससे साहित्य की एक नई भाषा ही खड़ी हो गई।

पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी, जिनकी यह भाषा कही जाती है, इसे एक विदेशी भाषा की तरह स्कूलों में सीखने के लिये विवश किये जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि राजा शिवप्रसाद ने उर्दू की ओर झुकाव हो जाने पर भी साहित्य की पाठ्यपुस्तक 'गुटका' में भाषा का आदर्श हिंदी ही रखा। उक्त गुटका में उन्होंने 'राजा भोज का सपना', 'रानी केतकी की कहानी', के साथ ही राजा लक्ष्मणसिंह के 'शकुंतला नाटक' का भी बहुत सा अंश रखा। पहला गुटका शायद संवत् 1924 में प्रकाशित हुआ था।

संवत् 1919 और 1924 के बीच कई संवाद पत्र हिंदी में निकले 'प्रजाहितैषी' का उल्लेख हो चुका है। संवत् 1920 में 'लोकमित्र' नाम का एक पत्र ईसाईधर्म प्रचार के लिये आगरे (सिकंदरे) से निकला था जिसकी भाषा शुद्ध हिंदी होती थी। लखनऊ में जो 'अवध अखबार' (उर्दू) निकलने लगा था उसके कुछ भाग में हिंदी के लेख भी रहते थे।

जिस प्रकार इधर संयुक्त प्रांत में राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग में रहकर हिंदी की किसी न किसी रूप में रक्षा कर रहे थे उसी प्रकार पंजाब में बाबू नवीनचंद्र राय महाशय कर रहे थे। संवत् 1920 और 1937 के बीच नवीन बाबू ने भिन्न–भिन्न विषयों की बहुत सी हिंदी पुस्तकें तैयार कीं और दूसरों से तैयार कराई। ये पुस्तकें बहुत दिनों तक वहाँ कोर्स में रहीं। पंजाब में स्त्री शिक्षा का प्रचार करने वालों में ये मुख्य थे। शिक्षा–प्रचार के साथ–साथ समाज सुधार आदि के उद्योग में भी बराबर रहा करते थे। अंग्रेजों के प्रभाव को रोकने के लिए किस प्रकार बंगाल में ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई थी, उसका उल्लेख पहले हो चुका है। नवीनचंद्र ने ब्रह्मसमाज के सिद्धांतों के प्रचार के उद्देश्य से समय–समय पर कई पत्रिकाएँ भी निकालीं। संवत् 1924 (मार्च सन् 1837) में उनकी 'ज्ञानदायिनी पत्रिका' निकली जिसमें शिक्षासंबंधी तथा साधारण ज्ञान विज्ञानपूर्ण लेख भी रहा करते थे। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि शिक्षा विभाग द्वारा जिस हिंदी गद्य के प्रचार में ये सहायक हुए वह शुद्ध हिंदी गद्य था। हिंदी को उर्दू के झमेले में पड़ने से ये सदा बचाते रहे। इलाहाबाद इंस्टीट्यूट के एक अधिवेशन संवत् 1925 में जब यह विवाद हुआ था 'देशी जबान' हिंदी को माने या उर्दू को, तब हिंदी के पक्ष में कई वक्ता उठकर बोले थे। उन्होंने कहा था कि अदालतों में उर्दू जारी होने का यह फल हुआ है कि अधिकांश जनता विशेषतः गाँवों की जो उर्दू से सर्वथा अपरिचित, बहुत कष्ट उठाती है इससे हिंदी के जारी होना बहुत आवश्यक है। इस पर गार्सां द तासी ने हिंदी के पक्ष में बोलने वालों का उपहास किया था।

उसी काल में इंडियन डेली न्यूज के एक लेख में हिंदी प्रचलित किए जाने की आवश्यकता दिखाई गई थी। उसका भी जवाब देने तासी साहब खड़े हुए थे। 'अवध अखबार' में जब एक बार हिंदी के पक्ष में लेख छपा था तब भी उन्होंने संपादक की राय का जिक्र करते हुए हिंदी को एक 'भद्दी बोली' कहा था जिसके अक्षर भी देखने में सुडौल नहीं लगते।

शिक्षा के आंदोलन के साथ ही साथ मतमतांतर संबंधी आंदोलन देश के पश्चिमी भागों में भी चल पड़े। इसी के साथ दयानंद सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और संवत् 1920 से उन्होंने अनेक नगरों में घूम–घूम कर व्याख्यान देना आरंभ किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये व्याख्यान देश में बहुत दूर–दूर तक प्रचलित साधु हिंदी भाषा में ही होते थे। स्वामीजी ने

अपना 'सत्यार्थप्रकाश' तो हिंदी या आर्यभाषा में प्रकाशित ही किया, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिंदी दोनों में किए। स्वामी जी के अनुयायी हिंदी को 'आर्यभाषा' कहते थे। स्वामीजी ने संवत् 1922 में 'आर्यसमाज' की स्थापना की और सब आर्यसमाजियों के लिये हिंदी या आर्यभाषा को पढ़ना आवश्यक ठहराया। संयुक्त प्रांत के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्यसमाज के प्रभाव से हिंदी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक संपर्क से पंजाबवालों की लिखने–पढ़ने की भाषा उर्दू ही रही थी। आज जो पंजाब में हिंदी की पूरी चर्चा सुनाई देती है, इन्हीं की बदौलत है।

संवत् 1910 के लगभग ही विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान् पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी के व्याख्यानों और कथाओं की धूम पंजाब में आरंभ हुई। पंडित श्रद्धारामजी संवत् 1912 में कपूरथला पहुँचे और उन्होंने महाराज के सब संशयों का समाधान करके प्राचीन वर्णाश्रम धर्म का ऐसा सुंदर निरूपण किया कि सब लोग मुग्ध हो गए। पंजाब के सब छोटे–बड़े स्थानों में घूमकर पंडित श्रद्धारामजी उपदेश और वक्तृताएँ देते तथा रामायण, महाभारत आदि की कथाएँ सुनाते। उनकी कथाएँ सुनने के लिए दूर–दूर से लोग आते और सहस्रों आदमियों की भीड़ लगती थीं। उनकी वाणी में अद्भुत आकर्षण था और उनकी भाषा बहुत जोरदार होती थी। स्थान–स्थान पर उन्होंने धर्मसभाएँ स्थापित कीं और उपदेशक तैयार किए। उन्होंने पंजाबी और उर्दू में भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। पर अपनी मुख्य पुस्तकें हिंदी में ही लिखी हैं। अपना सिद्धांतग्रंथ 'सत्यामृतप्रवाह' उन्होंने बड़ी प्रौढ़ भाषा में लिखा है। वे बड़े ही स्वतंत्र विचार के मनुष्य थे और वेदशास्त्र के यथार्थ अभिप्राय को किसी उद्देश्य से छिपाना अनुचित समझते थे। इसी से स्वामी दयानंद की बहुत सी बातों का विरोध वे बराबर करते रहे। यद्यपि वे बहुत सी बातें कह और लिख जाते थे जो कट्टर अंधविश्वासियों को खटक जाती थीं और कुछ लोग इन्हें नास्तिक तक कह देते थे पर जब तक वे जीवित रहे सारे पंजाब के हिंदू उन्हें धर्म का स्तंभ समझते रहे।

पंडित श्रद्धारामजी कुछ पद्यरचना भी करते थे। हिंदी गद्य में तो उन्होंने बहुत कुछ लिखा और वे हिंदी भाषा के प्रचार में बराबर लगे रहे। संवत् 1924 में उन्होंने 'आत्मचिकित्सा' नाम की एक अध्यात्म संबंधी पुस्तक लिखी जिसे संवत् 1928 में हिंदी में अनुवाद करके छपाया। इसके पीछे तत्त्वदीपक, धर्मरक्षा, 'उपदेशसंग्रह' (व्याख्यानों का संग्रह), 'शतोपदेश' (दोहे) इत्यादि संबंधी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने अपना एक बड़ा जीवनचरित्र (1400 पृष्ठ के लगभग) लिखा था जो कहीं खो गया। 'भाग्यवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी संवत् 1934 में उन्होंने लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई।

अपने समय के वे एक सच्चे हिंदी हितैषी और सिद्धहस्त लेखक थे। संवत् 1938 में उनकी मृत्यु हुई। जिस दिन उनका देहांत हुआ उस दिन उसके मुंह से सहसा निकला कि 'भारत में भाषा के लेखक दो हैं – एक काशी में, दूसरा पंजाब में। परंतु आज एक ही रह जायगा।' कहने की आवश्यकता नहीं कि काशी के लेखक से अभिप्राय हरिश्चंद्र से था।

राजा शिवप्रसाद 'आमफहम' और 'खासपसंद' भाषा का उपदेश ही देते रहे, उधर हिंदी अपना रूप आप स्थिर कर चली। इस बात में धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों ने भी बहुत कुछ सहायता पहुँचाई। हिंदी गद्य की भाषा किस दिशा की ओर स्वभावतः जाना चाहती है, इसकी

सूचना तो काल अच्छी तरह दे रहा था। सारी भारतीय भाषाओं का साहित्य चिरकाल से संस्कृत की परिचित और भावपूर्ण पदावली का आश्रय लेता चला आ रहा था। अतः गद्य के नीवन विकास में उस पदावली का त्याग और किसी विदेशी पदावली का सहसा ग्रहण कैसे हो सकता था ? जब कि बँगला, मराठी आदि अन्य देशी भाषाओं का गद्य परंपरागत संस्कृत पदावली का आश्रय लेता हुआ चल पड़ा था तब हिंदी गद्य उर्दू के झमेले में पड़कर कब तक रुका रहता ? सामान्य संबंधसूत्र को त्यागकर दूसरी देशी भाषाओं से अपना नाता हिंदी कैसे तोड़ सकती थी ? उनकी सगी बहन होकर एक अजनबी के रूप में उनके साथ वह कैसे चल सकती थी। जबकि यूनानी और लैटिन के शब्द योरप के भिन्न–भिन्न मूलों से निकली हुई देशी भाषाओं के बीच एक प्रकार का साहित्यिक संबंध बनाए हुए हैं तब तक ही मूल से निकली हुई आर्य भाषाओं के बीच उस मूल भाषा के साहित्यिक शब्दों की परंपरा यदि संबंधसूत्र के रूप में चली आ रही है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

कुछ अंगरेज विद्वान् संस्कृतगर्भित हिंदी की हँसी उड़ाने के लिए किसी अँगरेजी वाक्य में उसी भाषा में लैटिन के शब्द भरकर पेश करते हैं। उन्हें यह समझना चाहिए कि अँगरेजी का लैटिन के साथ मूल संबंध नहीं है, पर हिंदी, बँगला, गुजराती आदि भाषाएँ संस्कृत के ही कुटुंब की हैं – उसी के प्राकृत रूपों से निकली हैं। इन आर्य भाषाओं का संस्कृत के साथ बहुत घनिष्ठ संबंध है। इन भाषाओं के साहित्य की परंपरा को भी संस्कृत की परंपरा का विस्तार कह सकते हैं। देशभाषा के साहित्य को उत्तराधिकार में जिस प्रकार संस्कृत साहित्य के कुछ संचित शब्द मिले हैं उसी प्रकार विचार और भावनाएँ भी मिली हैं। विचार और वाणी की इस धारा से हिंदी अपने को विच्छिन्न कैसे कर सकती थी ?

राजा लक्ष्मण सिंह के समय से ही हिंदी गद्य की भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी। अब आवश्यकता ऐसे शक्तिसंपन्न लेखकों की थी जो अपने प्रतिभा और सद्भावना के बल से उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित करते और उसमें ऐसे साहित्य का विधान करते जो शिक्षित जनता की रुचि के अनुकूल होता। ठीक इसी परिस्थिति में भारतेंदु का उदय हुआ।

•••

शब्दार्थ

जबान–वाणी, भाषा/ गुटका–छोटे आकार की पुस्तक/ सरस–रस सहित, रस युक्त/ प्राक्कथन–पूर्व कथन, भूमिका/ कुठार–कल्हाड़ी, फरसा/ नागरी–देवनागरी लिपि/ आर्यभाषा–संस्कृत से उत्पन्न आधुनिक भारतीय भाषाएँ/ वक्तृता–बोलने की शैली/ नास्तिक–ईश्वर में विश्वास न रखने वाला/ कुटुंब–परिवार/ उद्भावना–कल्पना, उत्पत्ति/ परिमार्जित–साफ, परिष्कृत/ अभिज्ञ–जानकार।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'राजा भोज का सपना' कहानी के कहानीकार कौन थे ?

(क) राजा शिवप्रसाद (ख) राजा लक्ष्मणसिंह ( )

(ग) भारतेन्दु (घ) श्रद्धाराम फुल्लौरी

2. राजा लक्ष्मणसिंह ने कौन सी पत्रिका निकाली ?

(क) कविवचन सुधा (ख) प्रजाहितैषी

(ग) बाला बोधिनी (घ) हिंदी प्रदीप ( )

उत्तरमाला– (1) क (2) ख

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौन से विदेशी विद्वान हिंदी की हितसाधना में तत्पर रहे ?
2. पिंकाट साहब का देहांत कहाँ हुआ ?
3. राजा लक्ष्मणसिंह ने कौन सा नाटक लिखा ?
4. 'सत्यार्थप्रकाश' के रचयिता कौन थे ?
5. श्रद्धाराम फुल्लौरी द्वारा रचित उपन्यास कौन सा है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'शकुंतला नाटक' की भाषा देखकर पिंकाट साहब प्रसन्न क्यों हुए ?
2. अपनी मृत्यु के अंतिम दिन श्रद्धाराम फुल्लौरी ने क्या कहा ?
3. 'हितोपदेश' का अनुवाद किसने किया ?
4. 'सत्यामृतप्रवाह' किसने लिखा ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा हिंदी भाषा के विकास में दिए गए योगदान पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. हिंदी भाषा के विकास में श्रद्धाराम फुल्लौरी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
3. पिंकाट साहब कौन थे ? उन्होंने हिंदी भाषा को क्या योगदान दिया ?

•••

यह भी जानें

स्वन परिवर्तन

1. संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों–का–त्यों ग्रहण किया जाए। अतः 'ब्रह्मा' को 'ब्रह्मा', 'चिह्न' को 'चिह्न', 'उऋण' को 'उरिण' में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमशः गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए।
2. जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है। जैसे – अर्द्ध > अर्ध, तत्व > तत्त्व आदि।

•••

16. बेचारा 'कामनमेन'

• हरिशंकर परसाई

लेखक परिचय

हरिशंकर परसाई का जन्म सन् 1924 ई. को जबलपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ। हिंदी में उद्देश्यपरक हास्य–व्यंग्य लिखने के क्षेत्र में परसाई जी को सर्वाधिक सफलता और लोकप्रियता प्राप्त हुई है। हिंदी में एम.ए. करने के पश्चात् ये मध्यप्रदेश की शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन करते रहे। आजीवन वे अनेक पत्र–पत्रिकाओं में विभिन्न शीर्षकों से नियमित स्तंभ लिखते रहे। आपने व्यंग्य का प्रयोग सामाजिक जीवन की विकृतियों और रुग्णताओं के निवारण के लिए शल्य–क्रिया के रूप में किया। साहित्य, समाज, धर्म और राजनीति के क्षेत्र में प्रकट होने वाली विकृतियों और विसंगतियों को आपकी लेखनी ऐसी वक्रता के साथ उभारती है कि उनके प्रति तीव्र विरोध और विद्रोह का भाव उमड़ पड़ता है। आपने निबंध, कहानी, रेखाचित्र और उपन्यास आदि साहित्य की अनेक विधाओं का व्यंग्यमय प्रयोग किया है। 'रानी नागफनी की कहानी' और 'तट की खोज' आपके व्यंग्यात्मक उपन्यास हैं। 'हँसते हैं रोते हैं' और 'जैसे उनके दिन फिरे' आपके व्यंग्य–कथाओं के लोकप्रिय संकलन हैं। सर्वाधिक संख्या में आपने निबंध लिखे हैं। इनकी कृतियाँ 'परसाई रचनावली' नाम से छह खण्डों में प्रकाशित है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत व्यंग्य लेख 'बेचारा कामनमेन' सन् 1949 में प्रहरी पत्र में छपी थी। इस लेख के आरंभ में, आजकल की प्रचलित 'कहानी' पर व्यंग्य करते हुए वे सामान्य व्यक्ति की ऐसी कहानी गढ़ लेते हैं जिसे आसपास प्रचलित आपा–धापी से कोई सरोकार नहीं है। बेचारा हलकू अनायास ही तथाकथित प्रतिष्ठित लोगों के बीच फँस जाता है और चाहकर भी नहीं निकल पाता। पाठ में कथित समाजसेवी और पत्रकारों पर करारा व्यंग्य हुआ है। उच्च वर्ग और देश–समाज के कर्ताधर्ता कहलाने वालों के सतहीपन पर चोट करने के साथ–साथ 'मौलिक पत्रकारिता' पर भी प्रश्न चिह्न लगाया गया है।

हमारे स्वातंत्र्योत्तर जीवन के अनेक ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं जिन्हें बिना व्यंग्य के चित्रित ही नहीं किया जा सकता। व्यंग्य के पैने नश्तरों के बिना आजादी के बाद के व्यामोह, सामाजिक पाखंड और राजनीतिक दोगलेपन की सूक्ष्म पर्तें उधेड़ी ही नहीं जा सकतीं। परसाई जी की यह रचना व्यंग्य के साथ–साथ हास्य और करुणा को भी समाहित किए हुए है।

मूल पाठ

शीर्षक देखकर रूढ़िवादी साहित्यिक पिता, पितामह और प्रपितामह सिर ठोंक लेंगे, ''कैसी उच्छृंखलता है!'' और अन्य भाषाओं के शब्दों के स्पर्श से पल्ला बचाने वाले पण्डित घृणा से नाक सिकोड़ेंगे, ''यह क्या खिचड़ी है।'' और एक पैर जमाने के पहिले ही दूसरा पैर उठाकर 'लाँग जम्प' करने को उतावले, हर एक विचित्रता को प्रगति मानने वाले प्रगतिवादी लोग मेरा नाम लिखकर चूम लेंगे और दस बार सिर से लगायेंगे, ''कैसी नवीनता है। इसे कहते हैं प्रगति!'' पर मेरा दुर्भाग्य कि मैं इनमें से कोई नहीं!

कहानी के नाम की भी राम कहानी है। एक दिन कहानी लिख रहा था। भूमिका ही लिख रहा था कि एक मित्र आ गये। मैंने कहा, सुनो! भला सुनाने का शौकीन कौन न होगा? पर कोई सुनाने वाले की पीड़ा, विवशता, संकट हो जान पाता! मैंने सुनाना शुरू किया– ''सम्राट अशोक का राज्य था। मगध में.....'' ''बस–बस!.....'' मित्र ने टोका, ''प्राचीनता के बैंक में जमा की हुई, गौरव की बपौती में से कब तक धन निकालते रहोगे ? यह अच्छा नहीं! अब तो तुम कभी–कभी झूठा जाली चैक बनाकर भी धन खींचने लगे! जीवन में यथार्थ से पराजित होकर प्राचीन के कल्पना–लोक में शरणार्थी बनकर विचरना चाहते हो ? बार–बार पीछे देखने में प्रगति में बाधा पहुँचती है।'' मैंने घबराहट को छिपाकर जवाब दिया, ''प्राचीन में जो कुछ शिव है, जो उज्ज्वल है उसे समाज के सामने लाने में ही तो कल्याण है।''

''नहीं, नहीं भाई! खाक कल्याण करते हो तुम! वही बात लिखोगे न ?– राजा, सात रानियाँ, हर एक के सात–सात बच्चे–'साते–साते उनचास' .....अरे बाप रे!.....हिन्दुस्तान में भोजन की उत्पत्ति कम और बच्चों की ज्यादा। क्या धरा है ऐसी तुम्हारी कहानियों में ?''

''अच्छा भाई, तो वर्तमान की ही लिखता हूँ। देखो ऐसा लिखूँ–''अमेरिका नामक महादेश में राकफेलर नाम के एक सज्जन रहते थे.....'' मुझे बोलने नहीं दिया आगे मित्र ने।

वे बोले, ''अरे राम! यह क्या बक रहे हो!''

''अच्छा भाई, मालूम होता है तुमने संकीर्ण राष्ट्रीयता की मदिरा अधिक पी ली है। खैर, स्वदेश की कहानी ही सुनो – भारत में एक डालमिया परिवार प्रसिद्ध है। इस परिवार में.....'' मेरे मित्र ने यहाँ कुछ ऐसा भाव बनाया कि मुझे डर लगा, कहीं मार न बैठे।

बोले वे, ''अरे जमाना गया भाई धनकुबेरों का। धन की प्रभुता का गान सुनने को कोई तैयार नहीं। यह शताब्दी बीसवीं है – सेंचुरी आफ कामनमेन, जन–साधारण की शताब्दी है यह। जनसाधारण के जीवन से हटा हुआ साहित्य तुम कहाँ खपाओगे ? किसके काम आयेगा ? कुछ 'कामनमेन' के बारे में लिखो मेरे भाई!'' पहिले तो मुझे मित्र के इन शब्दों में 'कम्यूनिज्म' की बू आयी और अपनी भलाई के लिए इनसे दूर रहना ही उचित समझा, पर बात कुछ ऐसी मन पर चढ़ी कि यह 'कामनमेन' की कहानी बन गयी।

''तेरी ठठरी बँध जाय! हाथ पै हाथ धरे बैठा है। आज तीन दिन हो गये। इत्ता भी नहीं बनता कि आसपास की काँजीहौस ही देख लेता।'' बुढ़िया ने हलकू के माथे पर एक चपत जड़कर, मंगल–कामना सहित तिरस्कार किया।

हलकू बुढ़िया का पुत्र था और बुढ़िया हलकू की माँ, यह बात साधारणतया लोगों को तब तक ज्ञात नहीं होती थी जब तक हलकू एक–दो महीने में घर से चुपचाप एक–दो रोज के लिए भाग न जाता और बुढ़िया 'हाय–हाय' करती भटकती न फिरती।

हलकू ग्वाला था। दो भैंसें थीं, जो बाप छोड़ कर मरा था। हलकू रोज सवेरे बर्तन में दूध रखकर शहर बेचने ले जाता और म्युनिसिपैलिटी के नलों का सदुपयोग करके काफी लाभ उठाता। उसके बर्तन वसिष्ठ के कमण्डल की तरह खाली ही न होते।

हलकू की अक्ल पर यदि किसी को सबसे कम विश्वास था तो उसकी माँ को। एक रुपये की चिल्लर भी नहीं गिन पाता था; चार सेर के दाम भी नहीं लगा पाता। हलकू की अवस्था

लगभग 35 साल की थी; और अगर उम्र के साथ–साथ ज्ञान और भी बढ़ता तो वह गाँव के स्कूल का हेडमास्टर जरूर हो जाता। पर हलकू ने होश सँभालने के बाद बीड़ी पीने और गाली देने के सिवा और कुछ न सीखा था।

हलकू की शादी भी नहीं हुई थी, बालब्रह्मचारी था। ऐसे पगले, सनकी, मूरख को कौन लड़की देता ? और हलकू ने इन आरोपों का खण्डन करने की चिन्ता भी नहीं की। पढ़ा–लिखा होता तो अखबार में प्रतिवाद छपाता, स्पीच में कहता और विवाह–विज्ञापनों वाले पृष्ठों पर नजर दौड़ाता, दो से चार हाथ कर ही लेता। क्योंकि इस विशाल देश में कोई ऐसा पुरुष नहीं, जिसे रूप, गुण, शील में समानता करने वाली योग्य स्त्री न मिल सके।

हलकू को बुढ़िया की बात लग गयी। बोला, ''अच्छा जाता हूँ रामपुर की काँजीहौस देखने। ला पैसे टिकट के।''

बुढ़िया ने दूसरी स्टेशन रामपुर की टिकट के आने–जाने के दस आने पैसे और चना–चबैना के लिए पाँच आने ऐसे पन्द्रह आने हाथ पर रख दिये। हलकू ने लाठी उठायी और चल दिया। स्टेशन जाकर टिकट लिया और जल्दी–जल्दी में सैकेण्ड क्लास के डब्बे में ही घुस पड़ा!

उसी दिन रामपुर में परचे छपकर बँट रहे थे –

'प्रसिद्ध किसान नेता स्वामी राघवानन्दजी रामपुर में आज शाम को जिला किसान परिषद् का उद्घाटन करेंगे। जनता यह भूली न होगी कि महान् क्रान्तिकारी स्वामी राघवानन्दजी हाल ही में 7 वर्ष के कठिन कारावास के बाद छूटे हैं।'

रामपुर से एक स्टेशन इसी तरफ मोहनपुर नाम का कस्बा था। सवेरे सेठ रामजीवन की दूकान पर गाँव के गणमान्य नागरिक इकट्ठे हुए। सेठ–साहूकार, नेता, मास्टर सब थे। रामजीवन ने कहा, ''आज शाम को रामपुर में स्वामी राघवानन्दजी का भाषण है। आज ही 12 बजे की गाड़ी से वे रामपुर जा रहे हैं जबलपुर से। अगर दो घण्टे के लिए अपने यहाँ उतर जायें, तो गाँव के भाग्य खुल गये, समझ लो।''

''पर वे रुक कैसे सकते हैं। उनका तो कार्यक्रम बन गया होगा न।'' परताप सिंह मास्टर ने कहा।

''अरे यह कौन मुश्किल बात है! लोगों ने तो महात्मा गाँधी की स्पेशल तक रोक ली थी। स्टेशन चल कर अड़ जाओ। जनता का प्रेम देखकर उतर पड़ेंगे। चार बजनेवाली गाड़ी से रामपुर भेज देंगे।'' रामजीवन सेठ के उत्साही उद्गार थे वे। ''अच्छा तो कुछ स्वागत की तैयारी कर लो। थोड़ा–बहुत चन्दा भी इकट्ठा कर लो भाई।'' सेठ किशनलाल, कांग्रेस के मण्डलेश्वर की हैसियत से बोले। किशनलालजी देश–सेवा करना चाहते थे, पर धन पर आँच न आने देते थे। एकाध बार स्वागत का खर्च उनके माथे पड़ चुका था। अब सतर्क हो गये थे।

चन्दा भी हो गया। हमारे विश्वास–परायण समाज में चन्दा मिलना मुश्किल नहीं है। अब तो 25 प्रतिशत कमीशन पर पेशेवर चन्दा इकट्ठा करनेवाले भी मिल जाते हैं। दिनभर किसी नाम से चन्दा इकट्ठा करके शाम को नौ आनेवाली सिनेमा सीट पर सुरैया की एक्टिंग देखनेवाले आपको अनेक मिलेंगे। चन्दा इकट्ठा करनेवाले का उत्साह हमेशा खतरनाक समझें।

रामजीवन सेठ के नेतृत्व में एक भीड़ स्टेशन चली। रास्ते में रामजीवन कहते जा रहे थे, ''अरे अब मेरे तो साथ पढ़े हैं। हमेशा फर्स्ट आते थे। और मुख से तो जैसे फूल झड़ते हैं।''

स्टेशन पर गाड़ी रुकी। सब भीड़ जल्दी–जल्दी सारी गाड़ी के दो–चार चक्कर लगा गयी। पर स्वामी राघवानन्दजी न मिले। रामजीवन सबके आगे थे। अचानक भीड़ ने सैकेण्ड क्लास के डब्बे के हैण्डल पकड़े हलकू को देखा। विचित्रता और असामंजस्य अक्सर महानता का भ्रम कराते ही हैं। सैकेण्ड क्लास के डब्बे में 'ऐसे' आदमी को देखकर बरबस भीड़ चिल्ला उठी, ''वै हैं स्वामीजी! कैसा सरल वेश है।''

रामजीवन ने भी अपने परिचय को पक्का करने के लिए कहा, ''हाँ–हाँ, वे ही तो हैं। वही नाम, वही गोल चेहरा, वे ही आँखें – हाँ, रंग जरा साँवला पड़ गया है।''

भीड़ ने नारे लगाये, ''स्वामी राघवानन्द की जय!'' हलकू को सैकेण्ड क्लास के डब्बे से निकालने के लिए आया हुआ टिकिट–चेकर रुक गया, महान् के सामने नतमस्तक हुआ।

रामजीवन ने हाथ जोड़कर मास्टर प्रतापसिंह द्वारा लिखकर रटवाये गये वाक्य दुहराये – ''महात्मन्! यद्यपि हमें विदित है कि आपको आज सन्ध्या समय रामपुर में विराट जनसमूह पर अपनी वाणी से अमृत– वृष्टि करनी है। तथापि इस नगर के क्षुद्र जन भी आपके सदुपदेशों को श्रवण करने के लिए लालायित हैं। केवल दो घण्टे समय देकर हम लोगों को कृतार्थ करेंगे, ऐसी आशा ही नहीं विश्वास है।'' ऐसा निवेदन कर रामजीवन ने आसपास देखा और जब साथियों की आँखों में 'शाबास' का संकेत पढ़ लिया तो डब्बे से ससम्मान उतारने के लिए बढ़ा।

''रामपुर उतरूँगा।'' हलकू ने विरोध किया। रामजीवन ने फिर हाथ जोड़कर कहा, ''जी हाँ महात्मन्, हमें विदित है, आपको अवकाश नहीं है। फिर भी हम लोगों के इस विनम्र निवेदन की अवहेलना कृपा कर न करिए।''

सेठ किशनलाल ने कान में कहा कि नेता लोगों को जबरदस्ती उतारना होता है, तब उन्हें जनता का प्रेम मालूम होता है। आखिर किशनलाल और रामजीवन दोनों ने हलकू को जबरदस्ती उतार लिया और एक पालकी पर बिठाकर ले चले। पीछे बड़ी भारी भीड़ थी। स्वामी राघवानन्द की जय के नारे लगा रहे थे। हलकू भौचक्का–सा बैठा था; घबड़ा रहा था, पर भाग भी न सकता था।

लोग कह रहे थे ––'कैसी सरल चितवन है! और वेश–भूषा भी कैसी सरल। डाढ़ी बनवाने की भी चिन्ता नहीं। कपड़े भी कैसे मैले–से, फटे हुए।''

हलकू नाखून चबाने लगा घबड़ाहट में। रामजीवन ने किशनलाल के कान में कहा, ''पूरे परमहंस हैं। जरा सुधबुध नहीं शरीर की!''

आधे रास्ते में पहुँचकर हलकू पालकी से कूद पड़े। ''अरे–अरे स्वामीजी क्षमा! जल्दी–जल्दी में मोटर का प्रबन्ध न हो सका।''

''पैदल चलौंगो।'' हलकू ने कहा।

''वाह, क्या नम्रता है! क्या विनय है ? मान–सम्मान से कोसों दूर भागते हैं।'' किशनलाल ने कहा।

दो–चार कदम चलने पर हलकू आसपास देखकर फिर चिल्लाया, ''भागो यहाँ से। इत्ते आदमी ने क्यों भीड़ लगायी है ?''

मास्टर प्रतापसिंह भीड़ से कह रहे थे, ''देखा ? इसे कहते हैं महानता! प्रदर्शन नहीं चाहते, प्रोपेगेण्डा नहीं चाहते, नाम नहीं चाहते। चुपचाप देश–सेवा करना चाहते हैं। धन्य है।'' और फिर हलकू के आगे हाथ जोड़कर बोले, 'भगवन्, यह जनसमुदाय आपके दर्शन करके कृतकृत्य होने को उत्सुक है।''

इतने में रास्ते के पास से एक गाय और एक भैंस निकली। अच्छी सुन्दर, हृष्ट–पुष्ट! हलकू की आँखें चमक उठीं, मुँह से निकल पड़ा, ''वाह! क्या बनायी है!''

दैनिक 'सन्देश' का संवाददाता वहीं था। उसने लिखा 'स्वामीजी ने भारत में गोधन के ह्रास पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि गोधन की वृद्धि से ही भारत का कल्याण हो सकता है। वर्तमान पीढ़ी भी, दूध के अभाव में निर्बल, निस्तेज हो रही है।'

जुलूस एक अट्टालिका के सामने पहुँचा। हलकू को रामजीवन ससम्मान भीतर ले गये। सोफे लगे थे। एक पर रामजीवन ने हलकू को बैठाया। हलकू ज्यों ही उस पर बैठा त्यों ही स्प्रिंगदार सोफे में छाती तक समा गया। घबड़ाकर एक चिहुँक के साथ दूर कूद गया और एक कोने में फर्श पर बैठ गया। एकत्रित जनसमूह आश्चर्य से देखने लगा। पर रामजीवन ने मुस्कुराकर बुद्धिमानी से सिर हिलाया और धीरे–धीरे कहा, ''स्वामीजी सादा जीवन पसन्द करते हैं। जब तक भारत में किसान राज्य न हो जाय, फर्श पर सोने की प्रताप प्रतिज्ञा कर ली है।''

जनसमूह धीरे–धीरे चला गया। अब सभा की तैयारी में लग गये। रामजीवन ने चाय बनवाकर भिजवायी। हलकू ने जल्दी से प्याला पकड़कर मुँह से लगा दिया। गरम चाय थी, मुँह जल गया और हाथ से प्याला छूटकर फर्श पर गिर पड़ा। नौकर घबड़ाकर मालिक के पास गया और हाल सुनाया।

दैनिक 'उत्कर्ष' का संवाददाता वहीं बैठा था। उसने लिखा–'स्वामीजी ने कहा कि चाय भारत के नौजवानों को बलहीन बना रही है। यह विष है जो देश के जीवन को खाये जा रहा है। इससे देश के लोग निस्तेज, बलहीन हो रहे हैं। चाय का उपयोग बन्द होना चाहिए।'

थोड़ी देर के बाद मधुर पकवान बनवाकर रामजीवन ने भोजन के लिए भेजे। हलकू ने साग–रोटी और दाल के सिवा और कुछ न खाया था। पहले खाना ध्यान से देखा और फिर बोला, ''भाजी रोटी!''

साप्ताहिक 'Indian Hero' पत्र का संवाददाता भी आ चुका था। उसने लिखा – 'The Swamiji advised Simple food and emphasised on the need of taking green vegetables.' (स्वामीजी ने साधारण भोजन तथा हरी सब्जियों के सेवन पर बल दिया।)

इधर जबलपुर किसान सभा का एक तार रामपुर किसान परिषद् की स्वागत समिति के पास पहुँचा –'Swamiji indisposed unable to come.' (स्वामीजी अस्वस्थ हैं, नहीं आ सकते)। और रामजीवन ने मोहनपुर से एक तार रामपुर किसान परिषद् की स्वागत समिति के सभापति को किया।

Swamiji detained. Will come in the evening.

(स्वामीजी रोक लिये गये हैं, शाम को आवेंगे)।

स्वागत समिति के सभापति के सामने इन दो तारों ने बड़ी समस्या खड़ी कर दी। आखिर उन्होंने तुरंत कार ली और दस मिनिट में मोहनपुर आ गये।

रामजीवन ने देखा तो प्रसन्न हो गये। बोले, ''अच्छा हुआ आप आ गये। स्वामीजी मोटर से ही चले जायेंगे। क्या कहना है साहब! बड़ी सौम्यमूर्ति है। कैसे सरल हैं। किसी बात की परवाह नहीं, विचारों में मग्न, भूले–से रहते हैं। बात–चीत भी नहीं करते। हम लोग तो बस कृतार्थ हो गये। आइए, दर्शन कर लीजिए आप भी।

सभापति बोले, ''अरे यह क्या कह रहे हैं आप ? जबलपुर से तो तार आया है कि स्वामीजी अस्वस्थ हैं, नहीं आ सकते। और तुम कहते हो यहाँ।''

रामजीवन बड़े जोर से हँसे, ''ये है राजनीति। किसी खिलाफ पार्टीवाले ने झूठा तार कर दिया होगा आपको। आइये, देख लीजियेगा।''

सभापतिजी चले उस मकान की ओर जहाँ हलकू बैठे थे। बाहर काफी भीड़ थी।

सभापतिजी के साथ जबलपुर के 'किसान मित्र' साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक पण्डित कौशलनाथ रसिकेश भी आये थे। रसिकेशजी के यहाँ हलकू आज सात साल से दूध देता है।

ज्योंही रसिकेशजी कमरे में प्रविष्ट हुए त्यों ही हलकू उठा और उनके पैर पर गिरकर रोने लगा – मैन्ना भैया मेरे को बचा लो! जे मेरे को मार डालेंगे। मैं तो भैंस.....! बस यहीं हलकू चूक गया। वरना उसमें और स्वामी राघवानन्द में कोई फर्क नहीं था, अभी तक। हलकू ईमानदार और सीधा होने के कारण आजीवन सन्त के पद का लाभ नहीं ले सका। वह भाग गया।

पर जो उसे राघवानन्द बनाकर स्वार्थ–साधन करना चाहते थे, उनके मुँह जनता में बहुत दिन तक नहीं दिखे।

•••

शब्दार्थ

उच्छृंखलता–स्वच्छंदता, मनमानी / ठठरी–कंकाल / प्रतिवाद–तर्क / क्षुद्र–छोटा / अवहेलना–अवज्ञा / प्रोपेगेण्डा–झूठा प्रचार

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विचित्रता और असामंजस्य किसका भ्रम कराते हैं ?

   (क) पवित्रता का (ख) महानता का ( )

   (ग) नाटकीयता का (घ) दुर्बलता का

2. 'इससे लोग निस्तेज, बलहीन हो रहे हैं।' 'इससे' सर्वनाम किस चीज के लिए प्रयुक्त हुआ है ?

   (क) चाय (ख) शराब

   (ग) गरिष्ठ भोजन (घ) धन ( )

   उत्तरमाला– (1) ख (2) क

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. हर एक विचित्रता को प्रगति मानने वाले क्या कहलाने लगे हैं ?
2. होश संभालने के बाद हलकू क्या–क्या सीख गया था ?
3. किसका उत्साह हमेशा खतरनाक समझने को कहा गया है ?
4. मधुर पकवान देखकर भी हलकू के मुँह से क्या निकला ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''हिन्दुस्थान में भोजन की उत्पत्ति कम और बच्चों की ज्यादा'' किस संदर्भ में कहा गया है ?
2. रामपुर में बँट रहे परचों पर क्या छपा था ?
3. हलकू बुढ़िया का पुत्र था, इसका पता कैसे चलता था ?
4. हलकू द्वारा नाखून चबाने पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?
5. सेठ किशन लाल की सतर्कता का क्या कारण था ?
6. दैनिक 'उत्कर्ष' के संवाददाता ने किस घटना पर समाचार दिया ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. हलकू का चरित्र चित्रण कीजिए।
2. पाठ में पत्रकारिता पर क्या व्यंग्य हुआ है ?
3. स्वामी राघवानन्द के बारे में अनुमानित आलेख लिखिए।
4. निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

   (क) ''अरे जमाना गया भाई.....कामनमेन की कहानी बन गई।''

   (ख) ''ज्योंही रसिकेश जी कमरे में .....वह भाग गया।''

•••

यह भी जानें

हल् चिह्न (्)

(क) (्) को हल् चिह्न कहा जाए न कि हलंत। व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देता है, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रूप से व्यंजन है। इस तरह से 'जगत्' हलंत शब्द कहा जाएगा क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वरांत नहीं।

(ख) संयुक्ताक्षर बनाने के नियम के अनुसार ङ्, छ्, ट्, ठ् ड्, ढ्, द्, ह् में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसे – चिह्न, बुड्ढा, विद्वान आदि में।

(ग) तत्सम शब्दों में प्रयोग वांछनीय हो तो हलंत रूपों का ही प्रयोग किया जाए; विशेष रूप से तब जब उनसे समस्त पद या व्युत्पन्न शब्द बनते हों। जैसे – प्राक्–(प्रागैतिहास), वाक्–(वाग्देवी), सत्– (सत्साहित्य), भगवन् – (भगवद्भक्ति), साक्षात्–(साक्षात्कार), जगत्–(जगन्नाथ), तेजस्–(तेजस्वी), विद्युत–(विद्युल्लता) आदि।

(घ) तत्सम संबोधन में हे राजन्, हे भगवन् रूप ही स्वीकृत होंगे। हिंदी शैली में हे राजा, हे भगवान लिखे जाएँ। जिस शब्दों में हल् चिह्न लुप्त हो चुका हो, उनमें उसे फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए। जैसे – महान, विद्वान, आदि; क्योंकि हिंदी में अब 'महान' से 'महानता' और 'विद्वान' से 'विद्वानों' जैसे रूप प्रचलित हो चुके हैं।

•••

17. भारतीय जीवन-दर्शन एवं संस्कृति

•इंदुमति काटदरे

लेखक परिचय

इस अध्याय की लेखिका हैं, इंदुमति काटदरे। इन्दुमति जी गुजरात की रहने वाली हैं। गुजरात में ही अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण कर विसनगर महाविद्यालय में आँग्ल विषय की प्राध्यापक रहीं। शिक्षा क्षेत्र में आपने भारतीय शिक्षा की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु 'पुनरुत्थान विद्यापीठ' की स्थापना की। सम्प्रति आप 'पुनरुत्थान विद्यापीठ' की संस्थापक कुलपति हैं। आप उत्तम अध्येता हैं। तत्त्व को मूल से समझकर उसे व्यवहार योग्य बनाने में आप सिद्धहस्त हैं। आपका गुजराती, मराठी, संस्कृत, हिंदी व अंग्रेजी भाषा में समान अधिकार है। आप लेखक, अनुवादक, संपादक एवं प्रखर वक्ता भी हैं। आपने धर्मपाल साहित्य (दस खण्ड) का गुजराती व हिंदी दोनों भाषाओं में अनुवाद कर उनका प्रकाशन किया है। शिशुवाटिका तत्त्व एवं व्यवहार, आत्मतत्त्व का विस्तार, शिक्षा का समग्र विकास प्रतिमान, शिक्षा का भारतीय प्रतिमान, समग्र शिक्षा योजना, वर-वधूचयन एवं विवाह संस्कार, अर्थशास्त्रः भारतीय दृष्टि, धर्म शिक्षा-कर्म शिक्षा एवं शास्त्र शिक्षा आपकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें हैं।

आप 'पुनरुत्थान संदेश' नामक एक मासिक पत्र भी निकालती हैं। आपके प्रधान संपादकत्व में 'चिति' नामक शोध पत्रिका का भी प्रकाशन होता है। आपने परिवार विषयक पाँच ग्रंथों का भी निर्माण किया है। आपकी योजना से 'पुण्य भूमि भारत संस्कृति वाचनमाला' के अन्तर्गत एक सौ लघु पुस्तिकाओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत अध्याय 'भारतीय जीवन दर्शन एवं संस्कृति' शिशुवाटिका तत्त्व एवं व्यवहार नामक पुस्तक में से लिया गया है। इसमें आपने भारतीय चिंतन की समग्रता एवं श्रेष्ठता को अत्यंत ही सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। इस पाठ में भारत की सांस्कृतिक महत्ता एवं उसके प्रति गौरव की भावना व्यक्त की गई है।

आज विश्व में अनेक देश हैं। प्रत्येक देश का अपना एक मूल स्वभाव होता है। उस मूल स्वभाव के अनुसार ही वह जीवन को देखता है, यही उसका जीवन दर्शन कहलाता है। भारत के मनीषियों ने आत्मस्थित होकर जीवन को देखने व समझने का प्रयास किया। तब इन्हें जीवन जैसा दिखाई दिया, वही भारतीय जीवन दर्शन कहलाया। इस जीवन दर्शन के आधार पर व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवहार की पद्धति का शास्त्र बनाया, वही भारतीय संस्कृति है। जीवन के किसी भी स्तर पर किसी भी पहलू का विचार करते समय तथा व्यवस्थाएँ एवं मर्यादाएँ बनाते समय जीवन दर्शन तथा संस्कृति का विचार आधार रूप में रखना आवश्यक हैं। इस दृष्टि से इस अध्याय में भारतीय जीवन-दर्शन एवं संस्कृति के मूल तत्त्वों का परिचय दिया गया है।

•••

मूल पाठ

सृष्टि एक ही तत्त्व का विस्तार है

उपनिषदों में वर्णन आता है कि ब्रह्म जिसे हम परमात्म तत्त्व भी कहते हैं, उसने एक से अनेक होने की कामना की – 'सोऽकामयत् एकोऽहम् बहुस्याम् इति।' इस प्रकार उस ब्रह्म ने अपने में से ही समग्र सृष्टि का सृजन किया। उसी सृष्टि में से चित्त बना, मन बना, बुद्धि बनी, अहंकार बना तथा ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, पंचतन्मात्रा एवं पंचमहाभूत आदि की उत्पत्ति हुई। उन्हीं में से सूर्य, वायु, पृथ्वी, जल आदि बने। उन्हीं में से वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, अरण्य तथा मनुष्य बने। इन सब में वह आत्मतत्त्व स्वयं अनुस्यूत ही है। स्वयं के इन विविध स्वरूपों का सृजक भी वह स्वयं ही है। इसलिए यह सम्पूर्ण सृष्टि मूल रूप में एक है और आत्मतत्त्व का ही विस्तार है।

जीवन एक व अखण्ड है

इस सृष्टि को ऊपर–ऊपर से देखने पर हमें इसमें अनेक भेद दिखाई देते हैं। मनुष्य-मनुष्य, रूप में, स्वभाव में, कृति में एक-दूसरे से भिन्न हैं। मनुष्य, कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति ये सभी सजीव होने पर भी एक दूसरे से भिन्न हैं। सृष्टि में सारे पदार्थ एक दूसरे से भिन्न हैं परंतु ऊपर से दिखाई देने वाली विविध प्रकार की भिन्नता होने पर भी मूल में जीवन एक ही है। जीवन एक ही है इसलिए अखंड भी है। स्थान के कारण से, अवस्था के कारण से, समय के कारण से उसकी अखंडता भंग नहीं होती। यत्र-तत्र और सर्वत्र, भूत-वर्तमान और भविष्य में, जड़ और चेतन में, वृक्ष और पशु में जीवन एक व अखंड ही है। ये सारे भेद ऊपरी हैं और आभासी हैं। इस सत्य को शिक्षा के माध्यम से जानना आवश्यक है।

सम्पूर्ण सृष्टि का आन्तरिक सम्बन्ध एकात्मता का है

सम्पूर्ण सृष्टि मूलरूप में एक है, इसलिए सबका एक-दूसरे के साथ एकात्मता का संबंध है। इसका अर्थ यह है कि जो आत्मतत्त्व जड़ में है, वही चेतन में है, जो पशु में है, वही मनुष्य में है, जो केरल के मनुष्य में है, वही आसाम के मनुष्य में है, जो भारतीय मनुष्य में है, वही जापान, जर्मनी या अमेरिका के मनुष्य में है। जो आत्मतत्व वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिक्ख या शैव और शाक्त में है वही मुस्लिम एवं ईसाई में है और वही यहूदी एवं पारसी में भी है।

प्रेमपूर्ण व्यवहार

जब सब में एक ही आत्मतत्व है तो हमारा सबके साथ स्वाभाविक संबंध प्रेम का है क्योंकि आत्मतत्व का स्वभाव ही प्रेम है। जब हम एक-दूसरे के साथ प्रेम से जुड़ते हैं तो हमें दूसरे को देने में आनंद आता है, दूसरों की सेवा करने में आनन्द आता है। हम पहले दूसरों का विचार करते हैं, बाद में स्वयं का विचार करते हैं। दूसरों के दुःख से दुखी होते हैं और उनका दुःख दूर करने की हमारी स्वाभाविक इच्छा होती है इसीलिए हमारी संस्कृति में दान की महिमा सबसे अधिक है। वृद्धसेवा, गुरुसेवा, रोगीसेवा, दरिद्रसेवा और सृष्टिसेवा को हमारे यहाँ श्रेष्ठ धर्म माना गया है। सेवा का ही प्रकट रूप पूजा है। दूसरों के लिए त्याग कर सकें, इसी दृष्टि से संयम करना सिखाया जाता है। हमारे यहाँ उपभोग से संयम को श्रेष्ठ माना गया है। अतः एकात्मता होने से प्रेम, सेवा, त्याग तथा संयम का आत्मीय व्यवहार होता है।

परस्पर पूरकता एवं चक्रीयता

हमारी मान्यता में सम्पूर्ण जीवन गतिमान है और यह गति चक्रीय है अर्थात् जहाँ से गति प्रारम्भ होती है, वहीं पर पूर्ण होती है। सागर के पानी ने अपनी यात्रा प्रारंभ की तो सागर से बादल बना, बादल से वर्षा, वर्षा से झरने, झरनों से नदी बनी और नदी फिर से आ मिली सागर में। यह पानी की गति भी है और पानी के विविध स्वरूप भी हैं। एक बीज ने अपनी यात्रा शुरू की तो बीज से बना अंकुर, अंकुर से तना, पर्ण, फूल और फल बनकर फिर से बीज बन जाता है। इसी प्रकार से मुनष्य का चक्र है – गर्भ, शिशु, बाल, किशोर, तरुण, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध होते-होते मृत्यु तक पहुँचता है। एक जन्म से दूसरे जन्म में यात्रा करते-करते जहाँ से आया, वहीं पहुँच जाता है। पूर्वजन्म, वर्तमान जन्म और पूर्व जन्म का यह चक्र चलता ही रहता है। इस सृष्टि में ऐसे छोटे-बड़े अनेक आकार के तथा परस्पर जुड़े हुए अनेकानेक चक्र हैं। ये सारे चक्र गतिमान हैं एवं परस्पर पूरक हैं। इस प्रकार से भारतीय दर्शन में जीवन की रचना परस्पर पूरक एवं चक्रीय है।

आत्मतत्त्व अमर है

इस चक्रीय गति के कारण से कहीं भी किसी का नाश नहीं है। आत्मतत्व अजर, अमर, अविनाशी है। इसलिए सारी रचना भी अजर, अमर व अविनाशी ही है। केवल स्थिति में अंतर होता है, आकार बदलता है, रूपांतरण ही होता रहता है। मूलतत्व सदैव एक ही रहता है, जैसे गेहूँ से हलवा बना, रोटी बनी, चूरमा बना। सबका रूप, रंग, आकार, स्वाद अलग-अलग परन्तु सब में मूलतत्त्व गेहूँ तो एक ही होता है। इसी प्रकार जड़-चेतन सब में मूल तत्व 'आत्म' एक ही है। इसलिए हमारे वेद कहते हैं – 'वयं अमृतस्य पुत्राः।' हम अमृत-पुत्र हैं, अजर-अमर हैं। हम परमात्म तत्व के एक अंश आत्मतत्त्व हैं।

कर्मवाद

इस चक्रीय गति का सम्बन्ध हमारे व्यवहार से भी है । हम मनसा-वाचा-कर्मणा जो व्यवहार करेंगे उसका फल हमें ही मिलेगा अर्थात् जब हम विचार के रूप में–भावना के रूप में, कृति के रूप में अथवा केवल बोलकर दूसरों के साथ जो व्यवहार करेंगे उसके परिणाम अंततः हमें ही भुगतने पड़ेंगे। किसी के विषय में बुरा सोचा तो हमारा ही बुरा होगा, भला सोचा तो हमारा ही भला होगा। किसी का अहित किया तो हमारा भी अहित होगा, इसी को कर्मवाद कहा गया है। हमारी स्थिति और गति हमारे ही कर्मों के अधीन है। इसी सूत्र को हमारे यहाँ कथा-कहानी, गीत-भजन, कहावतों-मुहावरों के माध्यम से जनमानस में उतारा गया है। एक अनपढ़ किसान भी कहता है – 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे'। एक भिक्षुक कहता है –'तुम एक पैसा दोगे, वह दस लाख देगा।' हम सब कहते हैं – 'जैसी करनी, वैसी भरनी।' हम सबसे यही विवेक युक्त व्यवहार अपेक्षित है।

अधिकार नहीं कर्तव्य

कर्मफल को समझ लेने पर हमारे व्यवहार के सन्दर्भ में जब हम विचार करते हैं तब अधिकार के छोर से नहीं परन्तु कर्तव्य के छोर से सोचते हैं। हम एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, एकात्म हैं यही सोचते हैं। लेने के बारे में नहीं, देने के बारे में सोचते हैं। संघर्ष की दृष्टि से नहीं, समन्वय की दृष्टि से सोचते हैं। हमारे व्यवहार की यह दृष्टि होने के कारण से यहाँ किसी को जीने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। जो सबसे अधिक शक्तिशाली है, योग्यतम है वही पाएगा, ऐसा हमारे यहाँ नहीं होता। हमारे यहाँ जो सबल है, वह दुर्बल का शोषण नहीं करता अपितु पोषण एवं रक्षण करता है। जब हम किसी से कुछ भी लेते हैं तो कृतज्ञता के भाव से ही लेते हैं, अधिकार के भाव से नहीं। हमारे सभी शास्त्रों में, परम्पराओं में, रीति-रिवाजों में यही दृष्टि दिखाई देती है। यही भारतीय जीवन दृष्टि है।

पुरुषार्थ चतुष्टय

जब जीवन एक व अखंड है तो हमारा व्यवहार उसके अनुरूप होना चाहिए। इस दृष्टि से मनीषियों ने हमारे व्यवहार के लिए चार आयाम बताए हैं, उन्हें चार पुरुषार्थ कहा है। ये चार पुरुषार्थ हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। 'मोक्ष' जीवन का लक्ष्य है, उसे पाने के लिए मनुष्य को हर संभव प्रयास करने चाहिए। 'काम' प्रत्येक मनुष्य के लिए प्राकृतिक अवस्था है। काम का अर्थ है सभी प्रकार की इच्छाएँ और सभी प्रकार की मनःस्थिति अर्थात् राग, द्वेष, लोभ, मोह, मद, मत्सर, क्रोधादि ये काम के ही रूप हैं। इन सबकी प्राप्ति के लिए 'अर्थ' साधन है। सभी प्रकार के उद्यम, क्रियाएँ, व्यवसाय आदि के माध्यम से प्राप्त होने वाली सम्पत्ति, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा आदि सब अर्थ हैं। 'धर्म' इन सबको नियमन में रखने वाली व्यवस्था है। धर्म व्यक्ति जीवन से लेकर वैश्विक स्तर तक की अत्यन्त सुगठित व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अधीन जब अर्थ और काम चलते हैं तब मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की यह अत्यन्त मूलगामी, सर्वस्पर्शी एवं समग्रता वाली पुरुषार्थ चतुष्टय की रचना है। यही रचना हमें पूर्णत्व की ओर ले जाती है।

जीवन का लक्ष्य मोक्ष

अपने मूल स्वरूप को सर्वार्थ में जानना और उसी में स्थित होना ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है। जब मनुष्य का जीवन सर्वश्रेष्ठ है तो उसका लक्ष्य भी सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए, इसी को हमारे यहाँ मोक्ष कहा गया है। मोक्ष अर्थात् मैं देह नहीं, प्राण नहीं, मन नहीं, बुद्धि भी नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। आत्मा की अनुभूति होना ही सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति है। उसके बाद हमारा जो सहज व्यवहार होगा, वही श्रेष्ठ व्यवहार होगा। ऐसे मनुष्य के व्यवहार के संबंध में जब हम विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि यह व्यवहार प्रेम का ही होगा, घृणा का नहीं। देने का ही होगा, लेने का नहीं। संयम का ही होगा, भोग का नहीं। रक्षण का ही होगा, शोषण का नहीं। कृतज्ञता का ही होगा, कृतघ्नता का नहीं तथा कर्तव्यनिष्ठ ही होगा, अधिकारनिष्ठ नहीं। हमारे लिए मोक्ष का यही अर्थ अभिप्रेत है।

भारत की चिरंजीविता का रहस्य

विश्व का इतिहास देखने पर ध्यान में आता है कि अनेक राष्ट्र, अनेक संस्कृतियाँ आई और गईं परन्तु भारत सबसे पहले भी था और आज भी है। भारत की जीवन को देखने की एक समग्र दृष्टि है तथा जीवन को धारण करने की व्यवस्था इतनी अधिक सर्वहितकारक है कि इनके रहते भारत का नाश हो ही नहीं सकता। भारत अपने जीवन दर्शन एवं संस्कृति के कारण ही चिरंजीवी है।

हमारा यह भाग्य है कि हमें मनुष्य जन्म मिला, उससे भी बड़ा अहोभाग्य यह है कि हमें ईश्वर ने भारत भूमि में पैदा किया। उस भारत भूमि में, जिसने 'सर्वभूतहितेरता' की कामना की, जिसने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अलख जगाई, जिसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का घोष कर संपूर्ण विश्व के साथ एकात्मता का संबंध स्थापित किया, जिसने संपूर्ण विश्व को अपने जैसा श्रेष्ठ बनाने हेतु 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का निश्चय किया। ऐसी वत्सल भारत भूमि के समग्र जीवन दर्शन के अनुरूप हम सब अपना जीवन जीकर इस मनुष्य जन्म की सार्थकता सुनिश्चित कर सकते हैं ।

•••

शब्दार्थ

आत्मस्थित–स्वयं में स्थित / अनुस्यूत–मिला हुआ / आभासी–बनावटी / अजर–जरा (वृद्धावस्था) रहित। वाचा–वाणी द्वारा / अभिप्रेत–जानने योग्य

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय दर्शन में जीवन की रचना है –
   (क) पूरक (ख) चक्रीय
   (ग) पूरक एवं चक्रीय (घ) असत् ( )
2. जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है –
   (क) धर्म (ख) अर्थ
   (ग) काम (घ) मोक्ष ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'सर्वभूतहितेरताः' से क्या आशय है ?
2. 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से क्या भावना ध्वनित होती है ?
3. मनुष्य और पशु में कौन–सा तत्व समान है ?
4. सृष्टि का सृजन किस तत्व में से हुआ है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सृष्टि निर्माण का क्रम क्या बताया गया है ?
2. भारत की चिरंजीविता का रहस्य क्या है ?
3. धर्म से क्या आशय है ?
4. 'कर्मवाद' वैज्ञानिक सिद्धांत कैसे है ? समझाइए।
5. संयम को उपभोग से श्रेष्ठ क्यों माना गया है ?

6. सभी मनुष्यों की एकात्मता का रहस्य क्या है ?

7. मानव की पूर्णता से क्या आशय है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय जीवन-दर्शन क्या है ? समझाइए।

2. चारों पुरुषार्थ किस प्रकार हमें पूर्णता की ओर ले जाने वाले हैं ?

•••

यह भी जानें

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

(क) पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे – मिलाकर, पीकर, रोकर आदि।

(ख) कर + कर से 'करके' और करा + कर से 'कराके' बनेगा।

•••

18. यात्रा का रोमांस

• मोहन राकेश

लेखक परिचय

मदन मोहन गुगलानी, उर्फ मदन मोहन, उर्फ मोहन राकेश का जन्म अमृतसर में सन् 1925 ई० में हुआ। उनकी उच्चतर शिक्षा लाहौर के औरिएण्टल कॉलेज में हुई। उन्होंने शास्त्री और एम.ए. (संस्कृत) की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1947 में विभाजन के बाद वे जालंधर में आकर बसे। वहाँ से उन्होंने हिंदी में एम.ए. किया। कुछ समय तक बम्बई, शिमला और जालंधर में प्राध्यापन किया। 1962–63 में 'सारिका' के संपादक रहे। फिर दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर सांध्य–अध्ययन संस्थान में प्राध्यापक नियुक्त हुए लेकिन वहाँ भी टिक नहीं सके। उन्होंने नौकरी का विचार सदा के लिए त्याग दिया और स्वतन्त्र लेखन में लगे रहे।

मोहन राकेश की प्रतिभा अनेक विधाओं में प्रतिफलित हुई है। कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा–वृत्तांत और निबंध। परंतु, उन्हें साहित्यकार के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने का प्रधान श्रेय उनके तीन नाटकों को है – लहरों के राजहंस, आषाढ़ का एक दिन और आधे–अधूरे। मोहन राकेश स्वभाव से स्वच्छन्दता–प्रेमी थे। एतएव उनमें यायावर–वृत्ति अथवा घुमक्कड़ दृष्टि से साहित्यिक शैली में अंकित किए हैं। उनके यात्रा–वृत्तांत 'आखिरी चट्टान तक' और 'परिवेश' में संगृहीत हैं।

पाठ परिचय

'यात्रा का रोमांस' निबन्ध और यात्रा–विवरण का मिश्रित रूप है। इसके वस्तुतः दो भाग प्रतीत होते हैं। पहले में यायावर–वृत्ति का विवेचन है। लेखक ने प्रतिपादित किया है कि सच्चा यायावर वही है जिसकी कोई मंजिल नहीं, जो मन की तरंगों के अनुसार आगे–और आगे चलते रहने में विश्वास करता है और जिसे रास्ते की बाधाओं में भी आनन्द की अनुभूति होती है। रचना के दूसरे भाग में कोल्हाई ग्लेशियर की यात्रा का वृत्तांत है। उसमें हिमानी–प्रदेश की संकटपूर्ण यात्रा का बहुत ही स्वाभाविक सजीव, संवेदनात्मक, चित्रोपम, रोमांचक और मनोरंजक वर्णन किया गया है।

मूल पाठ

यायावर के जीवन का सबसे बड़ा सन्तोष या असन्तोष इसमें है कि उनका रास्ता कभी समाप्त नहीं होता। वह चाहे जितना भटक ले, नई अनजान पगडंडियों का मोह उसके दिल से कभी नहीं जाता। उत्तरी ध्रुव पर जाकर ये पगडण्डियाँ दक्षिणी ध्रुव की ओर जाती प्रतीत होती हैं, और दक्षिणी ध्रुव पर जाकर भूमध्य–रेखा की ओर। और हर पगडंडी के दाएँ–बाएँ से जो छोटी पगडंडियाँ निकल जाती हैं, वे अलग। हर पगडण्डी का अपना आकर्षण होता है, यायावर कहाँ तक पैरों को रोके ? और पगडंडियों के अतिरिक्त अनिश्चित गन्तव्य का भी तो आकर्षण रहता है। अनिश्चित की सम्भावना का हर क्षण जो पुलक देता है, वह बँधे जीवन की सम्पूर्ण निश्चिंतता कहाँ दे पाती है ?

यह वृत्ति जो यायावर को एक जगह से दूसरी जगह ले चलती है – इसे नाम क्या दिया जाए। वाण्डर लस्ट ? परन्तु वाण्डर लस्ट के मूल में जो वृत्ति रहती है, वह क्या है। क्या है जो व्यक्ति को, जहाँ वह हो, वहाँ से अन्यत्र चल देने के लिए विवश करता है ? जिसकी वजह से हर नया रास्ता अच्छा लगता है। जिस रास्ते से एक बार गुजर जाएँ, उस रास्ते से दूसरी बार जाने को मन नहीं होता। सच, बहुत उलझन होती है जब, रात को डेरे पर पहुँचने के लिए भी, चले हुए रास्ते से लौटकर आना पड़ता है। मन होता है कि बस आगे–और आगे–चलते रहा जाए, भले ही वह चलना धरती के घूमने की तरह हो।

यायावर के अस्थिर पैर आखिर ढूँढ़ना क्या चाहते हैं ?

यायावर जानता है, पर वह उसे नाम क्या दे ? वह जानता है कि कुछ है जिसे न पाकर मन में असंतोष घिरा रहता है और जिसकी एक अस्फुट–सी झलक भी मन में आह्लाद और कभी–कभी उन्माद जगा देती है। 'सौन्दर्य' – या कोई भी एक शब्द उसे ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता। वह अस्पष्ट 'कुछ' यायावर के रास्ते में जहाँ–तहाँ बिखरा रहता है। यायावर उसे देखता ही नहीं, छूता भी है – और कई जगह सुनता और सूँघता भी है। उसके क्षणिक–से साक्षात्कार से ही चेतना सिहर उठती है। और यदि साक्षात्कार गहरा हो, तो अन्तर में एक शोला–सा भड़क उठता है।

यायावर की खोज, उसकी अस्थिरता, अपने में ही एक सिद्धि है क्योंकि गति का हर क्षण उसे रोमांचित करता है। यात्रा की थकान और बाधाओं में उसे सुख मिलता है। वास्तव में रास्ते की थकान और बाधाएँ ही तो यात्रा को यात्रा बनाती हैं। जहाँ बाधा नहीं है, कुछ अज्ञात और शंकास्पद नहीं है, सब निश्चित, आयोजित और सुरक्षित है, उस यात्रा को यात्रा कहा जाए, या घर का ही एक चलता–फिरता संस्करण ?

रास्ते चलते यायावर की आँख हर चीज को, यहाँ तक कि अपने को भी, दृश्य रूप में देखती है। नीले बादलों के आगे फैली घाटी की हरियाली एक विशाल दृश्यपट बनकर सामने आती है, तो सँकरी पगडंडी से घाटी की तरफ बढ़ती अपनी आकृति भी उस दृश्य पट का ही एक भाग होती है। तांबई आकाश और दूर तक फैले रेत के टीलों का चित्र उसके अपने कदमों की भी छाप लिए रखता है। अपने को दृश्य–रूप में देखता हुआ वह अपने प्रति वितृष्णा से अस्थिर भी हो सकता है, सहानुभूति से द्रवित भी, और अपने पर ठहाका लगाकर हँस भी सकता है।

यात्रा यायावर को जो तटस्थ दृष्टि देती है, वह रोज के द्वंद्वपूर्ण जीवन में रहकर प्राप्त नहीं होती। अपने जीवन के निकट वातावरण से हटकर, निजी परिस्थितियों के दबाव से मुक्त होकर, मन में कोई कुंठा नहीं रहती। नए वातावरण, नई परिस्थितियों और नए व्यक्तियों के साथ अधिक स्वस्थ और स्वाभाविक संबंध स्थापित हो सकता है। ऐसे में व्यक्ति अपनी आन्तरिक प्रकृति के अधिक अनुकूल होकर जी सकता है – अधिक उन्मुक्त भाव से अपने को नए अनुभवों के बीच खुला छोड़ सकता है। उस खुलेपन से उसके नैतिकता के मानदण्ड बदल जाते हैं – वह एक आरोपित नैतिकता में न जीकर अपनी आन्तरिक नैतिकता के अनुसार जीने लगता है। जितना थोड़ा–सा भी समय इस रूप में जी लेता है, वह साधारण रूप से जिए कई–कई वर्षों की तुलना में अधिक सार्थक प्रतीत होता है। उसके सम्बन्धों का आधार हो जाता है एक आदिम आवेश

जिसके कारण वह एक पेड़ के पत्तों को भी सहलाता है तो इस तरह जैसे एक बच्चे के गाल सहला रहा हो। ढलान के मोड़ पर जमे एक पत्थर को भी थपथपाता है, तो इस तरह जैसे घर के एक पालतू जानवर को थपथपा रहा हो। रात को पहाड़ी जंगल में उड़ते कीड़ों की आवाजें उसकी साँसों की आवाज के साथ घुल–मिल जाती हैं, और साँझ के झुटपुट में डेरे की तरफ आती खच्चरों की घंटियाँ उसे अपनी धड़कनों के अन्दर गूँजती महसूस होती है।

अपने से बाहर यायावर के सम्बन्धों के विस्तार की कोई सीमा नहीं रहती। उसे पूरी धरती अपना छोटा–सा घर लगती है और आकाश में बिखरे नक्षत्र वे पड़ोसी जिनसे उसका परिचय बढ़ाने को मन होता है। रात की खामोशी में किसी अनजाने मोड़ के पास खड़ा होकर वह देर–देर तक उन झिलमिलाते नक्षत्रों को देखता रह सकता है, और उस झिलमिलाहट की भाषा में ही अपने लिए कोई संकेत पाकर मुस्करा सकता है। फिर सम्भव है आगे चलते हुए वह उन नक्षत्रों की ओर हाथ हिला दे–जैसे कि देर तक बात कर चुकने के बाद अब उनसे विदा ले रहा हो।

जिसकी मंजिल पहले से तय हो, वह यायावर नहीं है। यायावर का एकमात्र लक्ष्य है अपने मन की तरंगों के अनुसार चलते चलता। वह जहाँ से गुजर जाए, वही उसका रास्ता है, और जहाँ पेड़ के तने से टेक लगा ले, वही उसकी मंजिल है। दिन–भर में उसे कितना रास्ता तय करना है, यह वह पहले से क्यों सोचे ? रात कहाँ बीतेगी, इसकी चिन्ता क्यों करे ? जहाँ जाकर आगे चलने को मन न हो, वहीं उसे रुक जाना है और रात उतर आने पर सोचना है कि रात कहाँ और कैसे बीत सकती है। जो पहले से सब कुछ तय करके चले, उसे मानना होगा कि उसे पथ पर विश्वास नहीं है। जिसका पथ पर विश्वास नहीं है, उसकी पथ के साथ मैत्री कैसे होगी ? और जिसकी पथ के साथ मैत्री नहीं, वह यायावर कैसा ? यायावर पथ का मित्र हो तो उसे पथ के सुख–दुःख पथ के साथ बाँटने होंगे, तभी पथ भी उसके सुख–दुःख बाँट सकेगा। पथ की नाट्यशाला अपने सब परदे तभी उसके लिए उठाएगी जब वह पथ की दलदलों और टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडियों से घबराए नहीं। तब दलदल के पास उसे झील का बिल्लौरी पानी चमकता दिखाई देगा और टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडियाँ उसे वहाँ ले जाएँगी जहाँ ताजा कमल अपनी अधमुँदी पत्तियाँ खोल रहे होंगे। वह काँटे से छिलकर आँख ऊपर उठाएगा, तो एक घटा फनियर की तरह उस पर घिरी होगी, और जब वह अपने खुश्क होंठों पर जुबान फेरेगा, तो सामने पंक्ति में खड़े बेंत के नाटे पेड़ विभिन्न नृत्य–मुद्राओं में बाँहें हिलाते नजर आएँगे। जहाँ उसका पाँव फिसलेगा, वहाँ नीचे नदी की हरी धारा कई–कई गाँवों का आलिंगन किए दिखाई देगी।

उनके चारों ओर कच्ची बर्फ होगी जिस पर किसी जंगली जानवर के पैरों के निशान बने होंगे। वातावरण में इतना कोहरा होगा कि उसे दो गज से आगे रास्ता नजर नहीं आ रहा होगा। वह कोहरे को चीरता और जंगली जानवर के पैरों के निशानों पर पैरा रखता हुआ दरिया की घाटी की तरफ उतरता जाएगा। परंतु कई बार पथ की नाट्यशाला यायावर को अभिनय की भूमि पर उतार देती है, और स्वयं दर्शक बनकर उस पर व्यंग्य कसती और उसका उपहास उड़ाती है।

कोल्हाई ग्लेशियर। बीहड़ और ऊबड़–खाबड़ रास्ता पार करके मैं तीन आदमियों के साथ लिद्दरवट के डाक–बंगले से वहाँ आया हूँ। वहाँ पता चलता है कि पास की पहाड़ी के ऊपर एक सुन्दर झील है–दूधसर। मैं अपने साथियों के साथ उस बिना पगडंडी की पहाड़ी पर चढ़ने लगता

हूँ। पहाड़ी की चोटी पर पहुँचने पर एक समतल मिलता है जिसके पीछे एक और चोटी है। हम इस तरह कई चोटियाँ पार करते हैं। पर दूधसर जिस चोटी पर है, वह अभी और ऊपर है। मारे प्यास के बुरा हाल होने लगता है, तो मैं अपने साथी घोड़े वाले के लिए डंठल चूसता हूँ। हरी घास से लदी पहाड़ी पर चढ़ते हुए जगह–जगह पाँव फिसल जाते हैं। जहाँ लगता है कि अब आगे और चढ़ सकना असम्भव है, वहीं पहाड़ी की करवट आगे का रास्ता खोल देती है। आखिर हम लोग उस चोटी पर पहुँच जाते हैं जहाँ से झील दूसरी तरफ नीचे नजर आती है। झील का हरा–नीला पानी इतना खामोश और उजला है कि हमें भूल जाता है कि जितना रास्ता चलकर आए हैं, अब उतना ही रास्ता चलकर लौटकर भी जाना है। मैं पत्थरों से लुढ़कता हुआ नीचे झील के किनारे पहुँच जाता हूँ। एक पतला साँप झील के पानी में लकीर खींचता हुआ दूसरे किनारे की तरफ तैर जाता है। मैं झील के किनारे इस तरह टहलता हूँ जैसे वह सृष्टि के निर्माण का पहला क्षण हो–और मैं स्वयं सृष्टि का पहला आदमी, जिसकी आँखें पहली बार उसी क्षण कुछ भी देख सकने के लिए खुली हों। मैं कुछ शब्द बोलकर जैसे पहली बार अपने को अपनी बोल सकने की सामर्थ्य का विश्वास दिलाता हूँ। तभी टप्–टप् बूँदें गिरने लगती हैं। ऊपर से आवाज दी जाती है तो मैं चौंककर जैसे उसे दूसरी सृष्टि की तरफ देखता हूँ जिससे अब मुझे नए सिरे से संबंध स्थापित करना है। पत्थरों का सहारा ले–लेकर ऊपर पहुँचता हूँ, तो बूँदें तेज हो जाती हैं। पहाड़ी के उस तरफ ग्लेशियर है– सदियों की सूखी स्याह बरफ के जबड़े फैलाए। उन जबड़ों के पीछे से ही वह घटा उठी है जो सिर पर आकर बरस रही है। हम लोग कुछ देर एक चट्टान की ओट में सिमटकर बैठे रहते हैं। एक–दूसरे के शरीर की गर्मी और मुँह से निकली भाप अच्छी लगती है। सबसे मन में असमंजस है कि अब लौटते वक्त रास्ता मिल पाएगा या नहीं–पर कोई किसी से यह बात नहीं कहता। साँझ उतर रही है, इसलिए वहाँ से जल्दी चल देना जरूरी है। बूँदें अभी रुकी नहीं, फिर भी हम लोग चट्टान के साये से निकलकर जल्दी–जल्दी चलने लगते हैं। मगर कुछ ही दूर जाकर पता चलता है कि जिस रास्ते से आए थे, उस पर अब इतनी फिसलन हो गई है कि एक–एक कदम चलता मुश्किल है। यह भी डर है कि पाँव जरा–सा उलटा–सीधा पड़ जाने से लुढ़क कर खाई में न जा गिरें। हम लोग उधर से लौटकर दूसरा रास्ता खोजने का प्रयत्न करते हैं। घोड़े वाले को विश्वास है कि वह दूसरे रास्ते से हमें सुरक्षित नीचे पहुँचा देगा। परन्तु कुछ दूर जाने के बाद उसे उस रास्ते की लकीर नहीं मिलती। हम लोग अपनी घबराहट में निश्चय करते हैं कि जैसे भी हो, हमें सीधे नीचे उतर जाना चाहिए। जिस जगह हम खड़े हैं, वह लुढ़कने पत्थरों की पहाड़ी है। एक पत्थर पर पाँव रखने से दस पत्थर नीचे सरक जाते हैं। जहाँ से एक पत्थर लुढ़कता है, वहाँ आस–पास से बीसियों पत्थर एक साथ नीचे को लुढ़कने लगते हैं। किसी–किसी क्षण लगता है कि हमें साथ लिए हुए वह सारी पहाड़ी ही नीचे को लुढ़क जाएगी। लुढ़कते पत्थर आवाज भी इतनी करते हैं कि दिल दहल जाता है। अब हम चार व्यक्ति नहीं चार बिन्दु हैं–एक–दूसरे से अलग–जो पत्थरों पर धीरे–धीरे नीचे को सरक रहे हैं। हर आदमी दूसरे को सावधान कर रहा है–''आराम से.....आराम से।'' कहीं से एक भी पत्थर फिसलता है तो हम चारों अपनी–अपनी जगह स्तब्ध हो रहते हैं। तब तक जरा भी आवाज सुनाई देती है, हम अपनी जगह से नहीं हिलते। फिर एक नए सिरे से कोई कहता है,

''आराम से.....'' और हम हाथों से टटोल–टटोलकर छह–छह इंच नीचे को सरकने लगते हैं। बीच में फिर वर्षा घेर लेती है, तो हम अपनी–अपनी जगह रुक जाते हैं। वर्षा गुजर जाती है, तो फिर उतरने लगते हैं। घटा, ग्लेशियर और पत्थर–वे सब दर्शक हैं, और हम लोग दृश्य हैं। हमारे प्राण हमारे हाथों में और रीढ़ के निचले हिस्से में सिमट आए हैं। सारी चेतना भी उसी हिस्से में है। जो सबसे आगे है, वह अपने को सबसे ज्यादा खतरे में महसूस करता है जो बीच में है, वह अपने को। जो पीछे है, वह अपने को। जो पीछे है, वह अपने को। आगे सीधी ढलान है। सबके दिल धड़कने लगते हैं। सहसा नीचे का एक पत्थर फिसलता है, और सबसे नीचे का आदमी लुढ़कता–फिसलता हुआ नीचे समतल पर जा पहुँचता है। वहाँ पहुँचकर वह सँभलता है, और पीछे के लोगों को आवाज देने लगता है, ''आ आजो, आ जाओ, कोई डर की बात नहीं है.....।''

लुढ़कते–रेंगते हुए हम लोग किसी तरह नीचे पहुँच जाते हैं। पैरों के नीचे अब समतल है; मगर वह जमीन नहीं है, ग्लेशियर की ठोस बरफ है। अब हमें ठोस बरफ पर चलते हुए आगे जाना है। मगर वह सीधा समतल नहीं है। बरफ में यहाँ–वहाँ बरफ की नालियाँ बनी हैं जिनमें से होकर बरफ का पानी बहता है। आस–पास बरफ की चट्टानें हैं। कई चट्टानों के नीचे बरफ की गुफाएँ हैं जिनकी गहराई उजाले के हल्के स्पर्श से दूर तक चमक जाती हैं। उनमें से किसी गुफा के पास से निकलते हुए पाँव फिसल जाने का अर्थ है हमेशा के लिए उस गुफा के मुँह में खो जाना। हम कहीं अलग–अलग होकर चलते हैं, और कहीं एक–दूसरे की बाँहें थामे हुए। हमारा एक साथी बीच–बीच में सबसे अलग भटक जाता है। वह इस तरह गौर से आस–पास देख रहा है जैसे वहाँ उसे किसी चीज की तलाश हो। पूछने पर वह व्यस्त भाव से कहता है, ''ऐसी जगहों पर कभी–कभी हीरे–जवाहरात पड़े मिल जाते हैं। जरा ध्यान से देखते हुए चलना चाहिए.....।''

एक–डेढ़ मील बरफ का समतल पार करके हम लोग मिट्टी की जमीन पर आते हैं। पैरों में इतनी ताकत नहीं कि और दस कदम भी चल सकें। मगर रात उतर रही है और हम लोग रात–भर वहाँ ग्लेशियर के पास नहीं पड़े रह सकते। रात–भर रहने और सर्दी से अपने को बचाए रखने का कुछ भी सामान हमारे पास नहीं है। जैसे भी हो हमें लिद्दरवट के डाक–बंगले तक पहुँचना ही है जो वहाँ से आठ मील दूर है।

ग्लेशियर से लिद्दरवट का सफर घोड़ों पर शुरू होता है पर हम लोग अभी चार मील नहीं जा पाते, कि अँधेरा हो जाता है। आगे रास्ता ऐसा है कि उसे अँधेरे में घोड़ों पर बैठे हुए पार नहीं किया जा सकता। घोड़े वाला तीनों घोड़ों को सँभालकर आगे–आगे चलने लगता है, हम लोग उसके पीछे–पीछे। रास्ते में कोई सीधी पगडंडी नहीं है–पत्थरों–चट्टानों पर से चढ़ते–उतरते हुए जाना है। एक तरफ ग्लेशियर से बहकर आता दरिया है, दूसरी तरफ पहाड़ी जिससे कई–कई झरने बहकर दरिया की तरफ आते हैं। जगह–जगह पत्थरों पर पैर रख–रखकर या घुटने–घुटने पानी में जाकर उन झरनों को पार करना होता है। जो छोटी–सी टार्च हमारे पास है, उसका सैल भी थोड़ी देर में चुक जाता है। दियासलाइयाँ भी खत्म हो जाती हैं। अब अँधेरा है, पानी है, पत्थर है, कीचड़ है और हम लोग हैं। एक जगह चट्टान से नीचे उछलते हुए एक घोड़े की टाँग टूट जाती है। घोड़े वाला लँगड़ाते घोड़े की लगाम थाम लेता है और आवाज देता जाता है, ''होशियार साहब, होशियार! चले आओ साहब, शाबाश!'' और कहीं पत्थरों से छिलते, तथा कहीं कीचड़ में

धप्प–धप्प करते हम लोग चले चलते हैं। अब हमें अँधरे का होश नहीं है। सर्दी का होश नहीं है। अपना भी होश नहीं है। होश है तो इतना कि लिद्दरवट अभी दूर है और हमें जैसे–तैसे चलते जाना है। एक जगह दरिया के उस पार हल्की रोशनी नजर आती है। क्या वह लिद्दरवट का डाक–बँगला है ? डाक–बँगला अभी दो मील से कम दूर नहीं। तो वह रोशनी कहाँ की है ? किसी गुज्जर का घर है ? हम लोग रुककर हताश स्वर में आवाजें देते हैं। जोर–जोर से चिल्लाकर उधर से किसी की आवाज सुनना चाहते हैं। मगर हमारी आवाजों का कोई उत्तर नहीं मिलता। केवल वह टिमटिमाती रोशनी एकटक हमें ताकती रहती है।

और ऐसे में फिर बारिश पड़ने लगती है। 'शाबाश साहब शाबाश' की आवाज पहले से ऊँची हो जाती है। रास्ता धीरे–धीरे कटता जाता है। पत्थर, चट्टानें और नाले पार होते जाते हैं। आखिर जब आगे जाते घोड़ों की टापें एक लकड़ी के पुल पर सुनाई देती है तो जान में जान आ जाती है। ''पहुँच गए साहब, शाबाश!'' घोड़े वाला चिल्लाकर कहता है और दूर लिद्दरवट के डाक–बँगले में एक बत्ती जल उठती है।

थके–टूटे हम लोग डाक–बँगले पहुँचते हैं। वहाँ पता चलता है कि वह अमावस की रात थी और डाक–बँगले में लोगों ने हमारे जिन्दा लौटकर आने की आशा छोड़ दी थी। फिर जलती आग पर तापे जाते हाथ, चाय की एक–एक प्याली.....। सुबह काफी देर से आँख खुलती है, तो पता चलता है कि घोड़े वाला सुबह–सुबह उठकर फिर ग्लेशियर की तरफ चला गया है। उसको दिए गए सामान में जो एक कैमरा–स्टेण्ड था, वह रात को उससे कहीं रास्ते में गिर गया था।

मगर उठकर तैयार होने तक पिछली रात बहुत पीछे रह जाती है। बात होने लगती है कि सरासर–मारसर की यात्रा के लिए अभी चलना चाहिए या कुछ दिन बाद।

अब यायावर फिर दर्शक है। जो गुजर चुका है, वह उसके लिए दृश्य है–उस दृश्य के अंतर्गत अपना–आप भी। कल रात तक जो एक दुर्घटना थी, वह अब उसके लिए एक रोमांचक घटना है। अब नयी पगडंडी उसके सामने है। उससे पूछा जाए कि कमबख्त, तू इतनी जोखिम उठाकर भी जोखिम के रास्ते पर चलने से बाज क्यों नहीं आता, तो वह सिर्फ मुस्करा देगा, क्योंकि जिस दिन वह जान लेगा, उस दिन वह यायावर नहीं रहेगा।

•••

शब्दार्थ

पगडंडियाँ–/ यायावर–घुमक्कड़ /द्वंद्वपूर्ण–दुविधाओं से भरा हुआ/ तटस्थ–स्थिर/ आह्लाद–खुशी, प्रसन्नता, आनन्द/ नाट्यशाला– जहाँ नाटक खेला जाए/ग्लेशियर–बर्फ के पहाड़/ हताश–निराश/

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. डाक–बँगला कहाँ था ?

(क) सरासर–मारसर में (ख) ग्लेशियर के बीच

(ग) झील के पास (घ) लिद्दरवट में ( )

2. यायावर की दृष्टि कैसी होती है ?

(क) तटस्थ (ख) अस्थिर

(ग) घुमक्कड़ (घ) द्वंद्वपूर्ण ( )

उत्तरमाला– (1) घ (2) क

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौन यायावर नहीं है ?
2. इस पाठ में लेखक किस ग्लेशियर की घटना बताता है ?
3. लेखक जिस झील को देखने जाता है, उसका नाम क्या है ?
4. लेखक झील को देखने गया, वह कौन सी रात थी ?
5. लेखक की अगली यात्रा में कहाँ पर जाने की योजना थी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. यायावर के जीवन का सबसे बड़ा संतोष या असंतोष किसमें है ?
2. यायावर का एकमात्र लक्ष्य क्या है ?
3. झील का पानी कैसा था ?
4. लेखक के मित्र रास्ते को गौर से देखकर क्यों चल रहे थे ?
5. घोड़े वाला जल्दी उठकर ग्लेशियर की तरफ क्यों गया ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ में लेखक ने यायावर–वृत्ति की क्या विशेषताएँ बताई हैं ?
2. झील देखकर लौटते हुए लेखक के साथ क्या–क्या घटित हुआ, विस्तार से बताइए।

•••

यह भी जानें

'वाला' प्रत्यय

(क) क्रिया रूपों में 'करने वाला', 'आने वाला', 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे – मैं घर जाने वाला हूँ, जाने वाले लोग।

(ख) योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला', 'टोपीवाला' (टोपी बेचने वाला), दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।

(ग) 'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो (ख) के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा; अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली बात आदि में 'वाला' निर्देशक शब्द है। अतः इसे अलग ही लिखा जाए। इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की, दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे –

गाँववाला – Villager गाँव वाला मकान – Village house

•••

19. अनोखी परीक्षा

• विजयदान देथा

लेखक परिचय

श्री विजयदान देथा हिंदी कथा साहित्य में राजस्थान के आलोक स्तम्भ हैं। बोरून्दा, जोधपुर में जन्मे श्री देथा ने अपनी एकान्त अखण्ड साहित्य साधना से हिंदी कथा साहित्य के भंडार की निरन्तर वृद्धि की। आपके कई कहानी संग्रह प्रकाशित हैं और पत्र–पत्रिकाओं में प्रायः कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। 'बिज्जी की कहानी' आपकी कहानियों का पर्याय नाम हो गया है। पुरातन परिवेश को नया संदर्भ प्रदान कर रोचक कथा लेखन आपकी विशेषता है। आपकी प्रसिद्ध कहानी 'दुविधा' पर हिंदी फिल्म 'पहेली' नाम से भी बन चुकी है। आपकी कहानियाँ राजस्थान की धरती की सौंधी–सौंधी सुगंध लिए हुए है। सरल, सरस, प्रवाह–पूर्ण, लोकोक्तियों, मुहावरों से समृद्ध भाषा–शैली आपका वैशिष्ट्य है।

पाठ परिचय

आत्मतत्व या परमात्मा सब तरफ व्याप्त है, वह सब कुछ देखता सुनता है, भारतीय दर्शन के इस शाश्वत सिद्धांत को सरल कहानी के माध्यम से अत्यंत सरल भाषा–शैली में किन्तु अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अनेकानेक शास्त्रों का पठन–पाठन, अद्वितीय विद्वत्ता या अन्य और कोई गुण व्यक्ति के गुण–कर्म स्वभाव की वास्तविक कसौटी नहीं है। कसौटी है उसका अन्तर्मन जो स्वार्थ आड़े आने पर या संकट पड़ने पर ही प्रकट होता है। छोटे भाई की एकान्त ढूँढने में असफलता उसके शाश्वत सत्य से साक्षात्कार की सफलता को अत्यन्त सुन्दर–सरल ढंग से अभिव्यक्त करती है।

मूल पाठ

एक था औघड़ महात्मा। मन–मौजी और नीम–पागल। इच्छा होती तो उगते सूरज के सामने आँखें मूँद कर सात बार जल चढ़ाता और कभी–कभार उसकी किरणों पर सात धोबे धूल उछाल देता। कभी माला जपने बैठता तो सात दिन और सात रातों तक उठता ही नहीं। और कभी माला के मनके तोड़कर घूरे के हवाले कर देता। कभी कहता कि मनुष्य योनि के बावजूद वह गधे की जिन्दगी जी रहा है। और कभी डींग हाँकता कि उससे बड़ा सन्त न तो जन्मा है और न कोई जन्मेगा। कई बार मौन व्रत धारण कर लेता तो होंठ ही नहीं खोलता और कभी माँ–बहिन की भद्दी गालियाँ निकालता तो रुकने का नाम ही नहीं। फिर भी उसके प्रति भक्ति–भाव में कोई खामी नहीं पड़ी। चरणों में सिर नवाकर दंडवत करने की परस्पर होड़–सी मच जाती। मन करता तो किसी को भी गले लगा लेता वरना मुँह थूक से भर देता। ठोकरें मार बैठता।

शिष्य बनने के निमित्त लोग–बाग उसकी खूब–सेवा बन्दगी करते पाँव पकड़ते। किन्तु एक बार मना करने पर ठेठ तक अड़ा रहता। कभी किसी भाग्यशाली पर मेहर हो जाती तो उसे महीनों तक मार पिदाता। उसके वश चलते वह किसी को भी आसानी से चेला नहीं बनाना चाहता था। आँखें तरेर कर कहता, स्वयं भगवान भी शिष्य बनने की खातिर हाथ जोड़े तब भी नहीं मानूँ।

गुरु बनना सरल है, पर शिष्य बनाना कठिन तपस्या है। तो कभी–कभार उस बावरे संत के जँचने पर किसी भी अजाने राहगीर को हाथ से इशारा करके पास बुलाता और उसे जबरदस्ती शिष्य बना लेता।

एक बार एक छोटी सी ढाणी के नवयुवक उसके पास आए। औघड़ महात्मा उन्हें दुत्कारते कहने लगा, किसी बड़े शहर से भी मैं एक साथ दो शिष्य नहीं बनाता, फिर एक फोड़े जितनी छोटी ढाणी से दो चेले क्यों कर बनाऊँ ? कोई एक बन्दा अपनी मरजी से सब्र कर ले तो दूसरे को अभी इसी वक्त चेला बना लूँगा। पर उस औंधी खोपड़ी के महात्मा ने जैसा कहा, वैसा किया नहीं। सब्र करने वाले को अदेर चेला मूँड लिया और उत्सुक व्यक्ति को डपट कर खदेड़ दिया।

एक मर्तबा उससे भी कहीं बेशी पागल व्यक्ति ने चेला न बनने का दृढ़ संकल्प किया तो उसे अपना गुरु बना लिया। दो सगे भाइयों ने एक बार उस विचित्र सन्त के पाँव पकड़कर जीवन पर्यंत न छोड़ने की भीष्म प्रतिज्ञा की तो उसे झख मार कर झुकना पड़ा। शुरुआत में तो उसने हमेशा वाली सूखी घुड़की से ही काम पटाना चाहा कि दो सगे भाइयों को एक साथ सपने में भी चेला नहीं बनाएगा। लेकिन वे चेले तो उससे भी अधिक हठी थे। कहा, ''अब तो शिष्य बने बिना सात जन्म तक पाँव नहीं छोड़ेंगे।''

गुरु के पास उस वक्त न तो पत्थर थे और न कोई बाँकी टेढ़ी लकड़ी। सो मुक्कों से ही धमाधम पीटते–पीटते उसके ही हाथ दुख चले पर भाइयों ने चूँ तक नहीं की। दोनों तरफ मामला पूरा खिंच गया। आखिर औघड़ सन्त को ही हार स्वीकार करनी पड़ी। मुस्कुराते हुए धीमे से बोला, ''मुझे क्यों खामखाह परेशान कर रहे हो ? अधिक शिष्य बनाने पर बड़े से बड़े पंथ का भी पतन होने में देर नहीं लगती। यदि तुम ऐसी ही जिद पर अड़े हुए हो तो मैं पहिले तुम्हारी परीक्षा लूँगा। जो भाई परीक्षा में सफल होगा उसे ही चेला बनाऊँगा। मेरी छवि खंडित होने की बजाए मैं मृत्यु का वरण करना बेहतर समझता हूँ।''

औघड़ महात्मा के श्रीमुख से पहली बार मुनासिब बात सुनते ही दोनों भाइयों ने तत्काल पाँव छोड़ दिए। हाथ जोड़कर अरदास की, 'आपकी जो भी आज्ञा होगी, उसकी अनुपालना में ही हमारे जीवन की सार्थकता है। शिष्य बनाने की चाह रखने वाले गुरुओं की छाया से भी हम दूर रहना चाहते हैं।'

तब महात्मा ने सहज भाव से आदेश दिया कि वे अपने गाँव जाकर दो बड़े–बड़े बकरे लाएँ, साथ ही तीखी धार वाली दो तलवारें। ऐसी एकान्त गुप्त ठौर जाकर उनका सिर काटें कि न कोई देखने वाला हो और न कोई सुनने वाला। यदि किसे भी भनक पड़ गई तो हरगिज शिष्य नहीं बनाएँगे। चाहे वह सिर पटक–पटक कर अपने प्राण ही क्यों न दे दें।

बस! यह काम तो एकदम आसान है। दोनों भाई पूर्णतया खुश व संतुष्ट होकर अपने गाँव गए। महात्मा के आदेश मुताबिक एक कसाई के पास दो जुड़वाँ बकरे मिल गए सामान्य आदमी की कमर तक ऊँचे। सफेद बुर्राक रंग। बाएँ एकदम नरम। बल खाते सींग पुष्ट गरदन। पुरखों के हाथों वक्त बेवक्त आजमाई तलवारें। धारदार और चमचमाती। महात्मा के चरणों में धोक देने के लिए झुके तो वह बिफर गया। गुस्से में हकलाते हुए कहने लगा, 'इस जघन्य अपराध की

खातिर मेरी अनुमति चाहते हो ? नहीं मिलेगी, सौ बार माथा रगड़ने पर भी नहीं मिलेगी। इनकी बलि चढ़ाओ न चढ़ाओ तुम्हारी मरजी। शिष्य तुम्हें बनना है, मुझे नहीं। मैंने तो किसी को भी अपना गुरु नहीं बनाया। समुची कुदरत ही मेरी गुरु है। कोई ज्ञान ग्रहण करने वाला चाहिए। भला कोई मनुष्य किसी मनुष्य का गुरु क्यों कर बन सकता है ? खैर छोड़ो इसी झीने और दुश्वार मर्म को। पर पुख्ता ख्याल रहे कि ज्ञात–अज्ञात रूप से भी किसी पंछी या चींटी तक को इस गुप्त बलि का आभास न हो। अब काला मुँह करो यहाँ से। यों टुकुर–टुकुर मेरा मुँह क्यों ताक रहे। शायद बकरों से पहले मेरा सिर कलम करने की सोच रहे हो ? कर डालो, मेरी मनाही नहीं है। गुरु बनाने का झंझट तो मिटे। मेरे प्रति लोगों की गलतफहमी का निवारण तो हो।'

तत्पश्चात् दोनों भाई अलग–अलग रवाना हुए। संयोग की महेर–मया कि बड़े भाई का काम तो थोड़ी दूर जाने पर ही सलट गया। पहाड़ के पाँवों तले ही एक ऐसी एकांत गुफा मिल गई कि दूसरी बार वह तलाश करना चाहे तो खोज नहीं सके। सतर्क होकर चारों तरफ देखा आदमजाद की बात तो दरकिनार, दूर–दूर तक कोई पंछी या किसी जानवर के निशान तक नजर नहीं आए। गुरु के निर्देश मुजब ही ठौर मिल गई, मानो इसी की खातिर उनका आशय हो। झटपट बकरे को अंदर धकेल कर स्वयं भीतर घुस गया। लगता है कि महात्मा जी की मंशा शायद उसे ही चेला बनाने की हो। तिस पर उसका अहोभाग्य कि बकरे का मुण्ड व रक्त–रंजित तलवार लिए जब वह महात्मा के आसन आया तो उस औघड़ महात्मा ने पीठ थपथपा कर उसे अपने पास बिठाया। बड़े भाई के दिल में चेला बनने की आकांक्षा फड़फड़ाने लगी।

किन्तु छोटा भाई तो निपट बौड़म ही निकला। जिस किसी निर्जन स्थान पर बकरे का मुंड काटने के लिए तैयार होता तो तलवार वाला हाथ काँपने लगता–अरे! यहाँ तो सूरज अपनी प्रखर किरणों से देख रहा है। भला उसकी किरणों से कौन–सी चीज अनदेखी रह सकती है ? कभी उसे आशंका होती कि हवा आँखें फाड़–फाड़ कर तलवार और बकरे को देख रही है। उसका श्वास और रक्त प्रवाह तक सुन रही है, ये पेड़ देख–सुन रहे हैं। जिन पेड़ों की जड़ें धरती के सघन अँधियारे में अपने अदीठ प्राणों को अविलम्ब खोज लेती है, उनके अनगिनत पत्तों से भला क्या चीज छिपी रह सकती है ? उड़ते पाखी पुख्ता तौर पर उसी की टोह ले रहे हैं। कीट–मकोड़े देख रहे हैं, सुन रहे हैं। बालू रेत का चमकता कण–कण देख रहा है। स्वयं बकरा तो देख ही रहा है। तलवार देख रही है। और वह स्वयं भी तो अंधा नहीं है। बकरे के सुकोमल बालों को देख रहा है। बकरे की औझरी में दुबका अंधेरा उसे देख रहा है।

छोटा भाई तो अजीब ही ऊहापोह में फँस गया। चारों तरफ भटकता हुआ तीन दिन और तीन रात इधर–उधर चक्कर लगाता रहा। किन्तु उसे कहीं भी ऐसी गुप्त ठौर नहीं मिली, जहाँ न कोई देख रहा हो और न कोई सुन रहा हो। रात का अंधियारा भी आँखें टमकारते देखे बिना नहीं रहता। तिस पर उसके दो ही नहीं, असंख्य आँखें हैं। चंचल जुगनूँ भी बगैर देख नहीं माने। ज्योंहि बकरे की मुंडी काटने को उद्यत होता तो राम जाने पत्थर पर भी आँख उग आती। बकरे और तलवार को देखने के लिए दमकने लगती। और तो और तालाब के किनारे एक के बाद एक लहरें भी उस कृत्य को देखने–सुनने के लिए मचल उठतीं। महात्मा का चेला न भी बना तो कोई बात नहीं उससे यह काम सपने में भी नहीं हो सकता। सपने की आँखें तो पहाड़ और समुद्र के

आर–पार देख लेती है। ब्रह्मांड के परे भी उनसे कुछ गोपनीय नहीं रहता। महात्मा इजाजत दें तो वह स्वयं मरने को तत्पर हो जाएगा, मगर किसी अन्य जीव को मार नहीं सकता। भले ही वह मौत का प्रतिरूप साँप या शेर ही क्यों न हो।

आखिर बुरी तरह परेशान व भीतर से क्षत–विक्षत होकर वह महात्मा के आसन पहुँचा। पूर्णतया श्लथ और विवर्ण। मानो महीनों की बीमारी या अनशन से उठा हो। तलवार और बकरा – दोनों की जिम्मेवारी से मुक्त होकर रिरियाते कहने लगा, ''माफ करिये, मुझे इस शर्त चेला बनने की कतई इच्छा नहीं है। इतनी बड़ी जीवंत दुनिया में कोई भी ऐसी गुप्त ठौर नहीं है, जहाँ मुझे या तलवार को या बकरे को कोई न कोई न देखता हो और न सुनता हो। धरती से ऊपर वायुमण्डल में भी मुझे ऐसी जगह कहीं नजर नहीं आती जो मेरे कृत्य को न देखे और न सुने।''

महात्मा ने बार–बार पूछ–ताछ की तब उसने अपने द्वंद्व की पूरी कथा सुनाकर अंत में कहा, ''मान लीजिए, दूसरा कोई भी मुझे न देख रहा हो, पर मैं स्वयं तो अपने आपको और अपने मन को देख ही पा रहा था। यही बकरा भी तो क्षुब्ध आँखों से सब कुछ देख रहा था। आप विश्वास करें, न करें, उस दौरान इस तलवार की आँखें झपझपाने लगी थीं। यदि मुझे किसी का चेला बनना है तो अपनी शर्तों पर बनूँगा। किसी दूसरे की हिदायत से नहीं। और इस तरह चेला मूँडने वाले गुरु की भी क्या अहमियत है।''

तब उस औघड़ ने छोटे भाई के चरण स्पर्श करते कहा, तुझे किसी का भी शिष्य बनने की जरूरत नहीं है। और आज मेरी अन्तिम साध भी पूरी हुई। जिस गुरु की तलाश थी, वह मुझे अजाने ही मिल गया। और उधर तेरे बड़े भाई के उनमान बकरे की मुंडी काटने वाले हजार चेले भी मिल जाएँ तो किस काम के। उलटे पन्थ और गुरु की गरिमा ही घटाएँगे।

शब्दार्थ

धोबे–अंजलि/ ठेठ–अंतिम सीमा तक/ मर्तबा–बार/ मुनासिब–उचित/ ठौर–स्थान/ अदेर–बिना विलम्ब के/ अदीठ–अदृश्य, जो दिखाई न दे/ पाखी–पक्षी/ औझरी –आमाशय/ श्लथ–थका हुआ/ विवर्ण–जिसका रंग उड़ गया हो/ साध–कामना/ दंडवत–लेट कर प्रणाम/ भाग्यशाली–किस्मत वाला/ मेहर–अनुकंपा/ बौड़म –अनाड़ी/ हिदायत–निर्देश/ झीने–बारीक, पतले/ दुश्वार–कठिन/ मर्म–रहस्य/ अहमियत–महत्व/ क्षुब्ध–निराश/ क्षत – विक्षत–घायल/

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. महात्मा अपना गुरु किसे मानते थे ?

(क) कुदरत को (ख) शिष्य को

(ग) ईश्वर को (घ) भाइयों को ( )

2. छोटे भाई का चरित्र किस प्रकार का था ?

(क) हिंसक (ख) दयालु

(ग) भक्त (घ) मूर्ख ( )

उत्तरमाला– (1) क (2) ख

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. बड़ा भाई बकरे को लेकर कहाँ गया ?
2. महात्मा जब मौन धारण कर लेता तो क्या करता था ?
3. महात्मा ने अनुमति क्यों नहीं दी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. महात्मा क्या डींग हाँकता था ?
2. महात्मा ने भाइयों की परीक्षा कैसे ली ?
3. छोटा भाई बौड़म क्यों निकला ?
4. छोटा भाई बकरे की बलि क्यों नहीं दे सका ?

निबंधात्मक

1. महात्मा का चरित्र–चित्रण कीजिए।
2. छोटे भाई ने महात्मा का शिष्य बनने से क्यों मना कर दिया ?
3. महात्मा ने अपना गुरु किसे बनाया और क्यों ? लिखिए
4. छोटा भाई अजीब उहापोह में क्यों फँस गया ?

•••

यह भी जानें

श्रुतिमूलक 'य', 'व'

(क) जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ इनका प्रयोग न किया जाए, अर्थात् किए : किये, नई : नयी, हुआ : हुवा आदि में से पहले (स्वरात्मक) रूपों का प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए। जैसे – दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली

(ख) जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे – स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि (अर्थात् यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा)

•••

20. धरा और पर्यावरण

• कुप. सी. सुदर्शन

लेखक परिचय

बहुभाषाविद् विलक्षण प्रतिभा के धनी, मौलिक चिन्तक, ओजस्वी व प्रभावी वक्ता, पत्रकार श्री सुदर्शन जी अहिन्दी भाषी होते हुए भी हिन्दी निबन्ध विधा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। जबलपुर विश्वविद्यालय से विज्ञान और प्रोद्यौगिकी में उपाधि प्राप्त करने के उपरांत आपने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रार्पित कर दिया और देश की अनेक संस्थाओं से जुड़े होकर समाज सेवा में लग गए। जटिल और कठिन विषय को भी अपने गहन चिन्तन से सरल–सुबोध भाषा शैली में रखना आपका वैशिष्ट्य है। संसार की मौलिक समस्याओं पर इनकी पकड़ और भारतीय दृष्टि बेजोड़ है।

पाठ परिचय

पर्यावरण–संरक्षण से प्रभावित हम पर्यावरण प्रदूषण पर मात्र एकांगी विचार ही कर पा रहे हैं। यह सच है कि पर्यावरण–प्रदूषण आज की विकट व ज्वलंत समस्या है किन्तु इसके निदान और उपचार के मूल में उतरने की आवश्यकता है। दुर्भाग्य से हम अन्य क्षेत्रों के समान ही इस क्षेत्र में भी मात्र वही सीख रहे हैं जो योजनापूर्वक हमें सिखाया जा रहा है। इस समस्या की अपनी कोई भारतीय दृष्टि भी हो सकती है, हमारे हिसाब से भी इसके कारण और उपचार हो सकते हैं, स्वतंत्र भारत के स्वाभिमानी नागरिक को यह सीखने–समझने की आवश्यकता है। प्रसिद्ध विचारक व लेखक सुदर्शन जी ने इस समस्या का दूरगामी समाधान सुझाते हुए शाश्वत भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार की इस समस्या का समाधान करने में समर्थ है। विद्वान लेखक की भाषा अत्यंत सरल, प्रवाहयुक्त व शैली प्रभावपूर्ण है।

मूल पाठ

'माता भूमि पुत्रोऽम् पृथीव्या' केवल पृथ्वी के संबंध में ही नहीं अपितु भारतीय मन प्रकृति को और नदियों को भी मातृ स्वरूप में ही दर्शन करता है। गंगा को हम माता कहते हैं, तुलसी को हमने माता माना, अश्वत्थ वृक्ष की हमने पूजा की और इन सबके माध्यम से समाज के मन में प्रकृति के प्रति एक पूज्य भाव उत्पन्न किया। हम तो लोगों को दूध पिलाते हैं, कबूतरों, चिड़ियों को दाना चुगाते हैं, हम तो चींटियों तक को आटा डालते हैं क्योंकि इन सबके अस्तित्व का कोई प्रयोजन है। इस विश्व के प्रत्येक पेड़–पौधे, जीव–जन्तु का अपना एक प्रयोजन है। इस प्रयोजन को जान कर सारे विश्व की रचना में उसका क्या स्थान है इसको पहचान कर उसको बनाए रखें तभी समन्वय ठीक से बैठेगा। इसी को हमारे यहाँ धर्म कहा है। उसको पहचान कर उसके नियमों को जानकर तद्नुसार यदि हम अपनी सारी रचना और अपना विकास पथ आयोजित करेंगे तो प्रकृति के साथ हमारा सुसंगत विकास हो सकेगा। हमारी प्राचीन काल से ही यह अवधारणा रही है कि प्रकृति के साथ मिलकर चलो और इसीलिए प्रकृति के प्रति पूज्य भाव हमने उत्पन्न किया। प्रकृति को हमने माता कहा। धरती धारण करती है इसीलिए उसे माता कहा।

सारा पोषण हमें इसी धरा और प्रकृति से प्राप्त होता है और धरा पर जितनी भी वनस्पतियाँ और पशु–पक्षी आदि हैं, वे सब हमको सब प्रकार से पोषण प्रदान करते हैं और इसीलिए जब हम अपनी रक्षा की बात करते हैं तो इन सब की भी रक्षा होनी चाहिए। वास्तव में जिस धरा और प्रकृति के सहारे संपूर्ण मानव जाति का अस्तित्व निर्भर है, वही आज संकटग्रस्त हो गई है।

यह संकट आया कहाँ से ? कम से कम यह भारत की देन नहीं है। संसार के कुल प्रदूषण का 14 प्रतिशत पाप ढोने वाला अमेरिका आज हमें पर्यावरण की शिक्षा दे रहा है, प्रकृति के अन्दर जितनी भी सम्पदा है उसका अमर्यादित शोषण हो रहा है। अमेरिका में दुनिया की कुल 5 प्रतिशत जनसंख्या है, लेकिन दुनिया के 40 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग केवल अमेरिका करता है। सात बड़े समृद्ध देश, जो 'जी–सेवन' कहलाते हैं, इनमें दुनिया की 11 प्रतिशत जनसंख्या है, लेकिन दुनिया के 70 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग वे सब कर रहे हैं। ये लोग विकासशील देशों पर आरोप लगाते हैं कि प्रदूषण इनके कारण हो रहा है। वास्तव में यह बात गलत है। चूँकि विकासशील देशों के पास आज भी संसाधन हैं और उनके चुक रहे हैं, इसलिए उन संसाधनों को हस्तगत करने के लिए 'गैट व विश्व व्यापार संगठन' आदि व्यवस्था लाई गई है। क्योंकि उनको लगता है कि अपनी विकसित स्थिति को यदि बनाए रखना है तो जितना कच्चा माल, आज तक हमको उपलब्ध होता रहा है, उतना आगे भी मिलते रहना चाहिए। अमेरिका को यदि अपनी स्थिति को बनाए रखना है तो 40 प्रतिशत कच्चा माल बाहर से उसको मिलना चाहिए।

पश्चिम की उपभोगवादी दृष्टि में से प्रकृति के इस अमर्यादित उपभोग का विचार–विकास हुआ है। धरा या प्रकृति उनके लिए पूज्य नहीं अपितु उपभोग की वस्तु है, उनका अस्तित्व ही मनुष्य को सुख देने के लिए है, उनमें कोई जीवन नहीं अतः उनका जितना अधिकतम शोषण किया जा सकता है, करो। अपने महान वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु की खोज से पूर्व तक वे सब पेड़–पौधों को जड़ मानते थे। बसु की खोज को भी उन्होंने आसानी से स्वीकार नहीं किया था। महामना बसु तो जिन्हें आज जड़ माना जाता है उस धातु, पत्थर आदि को भी सजीव मानते थे। इस पर प्रयोग भी कर रहे थे किन्तु उन्हें अवसर नहीं मिल पाया। हमने तो प्रत्येक पदार्थ में प्रारंभ से आत्मतत्व का अस्तित्व स्वीकार किया है। 'सर्वं खल्वमिदम् ब्रह्म' यह सब कुछ निश्चित ही ब्रह्म है।

पश्चिम की अवधारणा में से ही खनिज दोहन, तेल दोहन, जंगलों की कटाई, दैत्याकार उद्योगों व मशीनों का निर्माण, रासायनिक खादें और खेती उसी अवधारणा की उपज है। रासायनिक खादों के अत्यधिक उपयोग के कारण अमेरिका में हजारों हेक्टेयर भूमि बंजर हो चुकी है। यही क्रम चलता रहा तो अमेरिका अगले 50 वर्षों में मरुस्थल हो जाएगा। हम भी बड़े उत्साह से उसी ओर बढ़ रहे हैं। रासायनिक खाद के कारण वस्तु मात्रा में अधिक व बड़ी अवश्य हो जाती है परन्तु उसकी पोषण क्षमता कम हो जाती है। इन रासायनिक द्रव्यों के कारण हमारे शरीर में अनेक प्रकार के नवीन रोग कैन्सर आदि उत्पन्न हो रहे हैं।

अभी जापान से आए कुछ वैज्ञानिक दीनदयाल शोध संस्थान की ओर से गोंडा में जो विभिन्न प्रयोग चल रहे हैं, उन्हें देखने गए। वहाँ पर उन्होंने भारतीय खेती का अध्ययन किया और कहा कि हजारों वर्षों से भारत में खेती हो रही है, फिर भी यहाँ की उर्वरा शक्ति कम क्यों नहीं हुई ? उनके ध्यान में आया कि यहाँ के हल करीब 6 इंच ही धरती खोदते हैं जिसमें केंचुए जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं वे और अन्दर चले जाते हैं। परिणाम स्वरूप जमीन और पोली होकर उर्वरा हो जाती है जबकि पश्चिमी देशों की मशीनें चार फुट धरती खोद डालती हैं और सभी केंचुए मर जाते हैं। धरती की उर्वरा शक्ति निरन्तर कम होती जाती है। उर्वरा शक्ति कम होने से रासायनिक खाद अधिक देनी पड़ती है और इसके परिणामस्वरूप उर्वरा शक्ति कम होने का दुष्चक्र और आगे बढ़ता रहता है। उन वैज्ञानिकों ने पाया कि भारतीय खाद पद्धति लम्बे समय तक स्थायी लाभ पहुँचाने वाली, कम लागत की टिकाऊ पद्धति है।

जंगल कटते जा रहे हैं। अमेरिका और पश्चिम के देश तो अपने जंगलों को खा गए हैं। अब उनकी दृष्टि एशिया–अफ्रिका पर है। राष्ट्र के सन्तुलित विकास के लिए 33 प्रतिशत जंगल आवश्यक हैं। स्वतंत्रता के समय हमारे देश में 22 प्रतिशत जंगल थे। आकड़ों के अनुसार अब ये 11 प्रतिशत शेष रह गए हैं और कुछ लोगों का मानना है कि केवल 6 प्रतिशत ही बचे हैं। हम यदि वन देवता को ही समाप्त कर देंगे तो कौन देव हमारी रक्षा करेगा। क्या हमें वनों के दोहन का अमर्यादित उपयोग तुरंत नहीं रोकना चाहिए ? प्रकृति की एक धारण क्षमता होती है और उसका यदि अतिक्रमण हुआ तो प्रकृति इसका बदला लेती है। यह प्रकृति की व्यवस्था है। विज्ञान भी अब इस भारतीय अवधारणा को सिद्ध कर रहा है। इसलिए प्रकृति के साथ खिलवाड़ करेंगे तो हमें उसके परिणाम भोगने पड़ेंगे। प्राणवायु कम होती जाएगी, धरती का वायुमण्डल गर्म होता जाएगा, पेड़–पौधे नष्ट होने का मात्र इतना ही परिणाम नहीं होगा। प्रकृति अपने आप को सन्तुलित करने के लिए अनेक विभीषिकाएँ उत्पन्न कर सकती हैं, फिर वह भूकंप हो, बाढ़ हो या भविष्य में इससे भी भीषण और कुछ। उसे सन्तुलन बनाए रखना है। हम प्रकृति–पुत्र अपना यह धर्म नहीं निभाते और प्रकृति माता के साथ अतिचार नहीं रोकेंगे तो माता स्वयं बदला लेगी। वह समर्थ है। नदियों को बाँधकर बड़े–बड़े बाँधों का निर्माण, प्रकृति माता की कोख से निरन्तर अति खनिज दोहन हमारे भोग–सुख को लम्बे समय तक संतुष्ट नहीं कर पाएगा।

फ्रांसिस बेकन मानता था, प्रकृति में सब जड़ वस्तुएँ हैं और इन सब वस्तुओं का उपयोग मनुष्य के लिए करना चाहिए। देकार्ते भी प्रकृति को जड़ मानकर मशीन के कलपुर्जे के समान उसका टुकड़ों–टुकड़ों में विचार करने को कहता था। न्यूटन तक यही चला। आइंसटाइन ने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया था। उन्होंने कहा मनुष्य अलग–अलग है और सारी पृथ्वी जड़ है, यह गलत है। वास्तव में मनुष्य भी संपूर्ण ब्रह्मांड का एक अंश है। समग्रता से विचार करो। विज्ञान का आगे का सूक्ष्म परमाणु विकास आइंसटाइन के इन विचार की देन है और मूलतः यह भारतीय अवधारणा है। हमें प्रकृति के साथ समन्वय ही नहीं अपितु आदरपूर्वक याचित सहयोग प्राप्त करने का भाव विकसित करना चाहिए।

हम मानकर चलते हैं कि प्रकृति का भण्डार असीमित है और असीमित भण्डार से हम असीमित उपभोग कर सकते हैं। किन्तु भारतीय चिन्तन हमसे कहता है कि प्रकृति का भंडार

असीमित नहीं है, उसका भंडार सीमित है। मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताओं के लिए तो प्रकृति के पास साधन है किन्तु अगर हम अवास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसका शोषण करेंगे तो हम प्रकृति को नष्ट करेंगे। सीमित साधनों में असीमित उपयोग नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे पुरखों ने हमसे कहा था –

''त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।

अर्थात् त्याग पूर्वक भोग करो।

तो हमें अपनी प्राचीन दृष्टि अपनाते हुए नया विकास पथ अपनाना होगा। पश्चिम प्रकृति के शोषण में विश्वास करता है। हम प्रकृति को माता मान उसके दूध पर पलने वाले हैं। हमारा उपभोग संयमित है। हमारे वर्तमान के लिए भी यही विकास पथ श्रेष्ठ है और यही शेष संसार को नष्ट होने के मार्ग से बचाने वाला मार्गदर्शक विकास पथ हो सकता है। हमारे ऊपर बहुत बड़ा दायित्व है क्योंकि हमारे पास एक जीवन दृष्टि है। हमारी इस दृष्टि और तत्वज्ञान का समर्थन आज का विज्ञान भी करने लगा है। उसके आधार पर एक नए विकास पथ की संरचना के लिए हम प्रतिबद्ध हों।

•••

शब्दार्थ

अश्वत्थ–पीपल का पेड़/अमर्यादित–मर्यादा रहित, बिना मर्यादा के/दैत्याकार– राक्षसों के आकार वाली अर्थात् विशाल, भयंकर/ मरुस्थल–रेगिस्तान/ उर्वरा शक्ति – उपजाऊपन/ समन्वय–सामन्जस्य/

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पर्यावरण के प्रति अमेरिकी दृष्टि क्या है ?

   (क) भोगवादी (ख) संतुलित उपभोग

   (ग) पृथ्वी माता के समान है (घ) प्रकृति चेतन है ( )

2. 'जी–सेवन' में किस प्रकार के राष्ट्र हैं –

   (क) प्रगतिशील (ख) पिछड़े

   (ग) विकासशील (घ) विकसित ( )

   उत्तरमाला– (1) क (2) घ

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत में पृथ्वी को क्या माना गया है ?
2. दुनिया के कितने प्रतिशत संसाधनों का उपयोग अमेरिका करता है ?
3. भूमि बंजर क्यों होती है ?
4. किस वैज्ञानिक ने प्राकृतिक पदार्थों को भी सजीव माना ?
5. केंचुए क्या काम करते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारतीय समाज में प्रकृति के प्रति आस्था के कुछ उदाहरण बताइए।
2. अमेरिका में भूमि बंजर क्यों होती जा रही है ?

3. प्राकृतिक संसाधनों के प्रति पश्चिमी देशों की क्या अवधारणा है ?
4. खेती में रासायनिक द्रव्यों के उपयोग से क्या हानियाँ हैं ?
5. भारत की मिट्टी में उर्वरा शक्ति बढ़ने का क्या कारण है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. विश्व में प्राकृतिक संसाधनों के घटने के मुख्य कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से होने वाली हानियाँ बताइए।
3. प्रकृति के प्रति भारतीय चिंतनधारा पर एक टिप्पणी लिखिए।

•••

यह भी जानें

अन्य नियम

(क) शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।

(ख) पूर्ण विराम (फुलस्टॉप) को छोड़कर शेष विरामादि चिह्न वही ग्रहण किए गए हैं जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं। जैसे – - (हाइफन/योजक चिह्न), – (डेश/निर्देशक चिह्न), :- (कोलन एंड डेश/विवरण चिह्न), , (कॉमा/अल्पविराम), ; (सेमीकोलन/अर्धविराम), : (कोलन/उपविराम), ? (साइन ऑफ इंटेरोगेशन/ प्रश्न चिह्न), ! (साइन ऑफ एक्सक्लमेशन /विस्मयसूचक चिह्न), ' (अपोस्ट्राफी/ऊर्ध्व अल्प विराम), " " (डबल इन्वर्टेड कॉमाज़/उद्धरण चिह्न), ' ' (सिंगल इन्वर्टेड कॉमा/शब्द चिह्न), ( ) { } [ ] (तीनों कोष्ठक), ...(लोप चिह्न), ० (संक्षेप सूचक), ˆ (हंस पद)।

(ग) विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया गया है। पर दोनों में यह अंतर रखा गया है कि विसर्ग वर्ण से सटाकर और कोलन शब्द से कुछ दूरी पर रहे।

(घ) पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का ही प्रयोग किया जाए। वाक्य के अंत में बिंदु (अंग्रेज़ी फुलस्टॉप .) का नहीं।

•••

रस प्रकरण

रस की परिभाषा

''काव्य को पढ़ने–सुनने अथवा नाटक को देखने से हृदय में अवस्थित रति, शोक, उत्साह आदि भावों में से किसी एक के निष्पन्न होकर प्रकाशित हो जाने से जिस अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है, उसे काव्य में रस कहते हैं।''

अभिप्राय यह है कि काव्य, नाटक आदि को पढ़ने या देखने पर पाठक या दर्शक जिस आनंद की अनुभूति करता है उसे काव्यशास्त्र में 'रस' कहा जाता है।

रस का स्वरूप

रस की अनुभूति कैसी होती है, आचार्यों ने इसका विषद विवेचन किया है। आचार्य विश्वनाथ ने रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अपने ग्रंथ 'साहित्य दर्पण' में लिखा है :–

सत्त्वोद्रेकादखंड–स्व–प्रकाशानंद–चिन्मयः।
वेद्यान्तर–स्पर्श–शून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।
लोकोत्तर–चमत्कारप्राणः कश्चित् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायं आस्वाद्यते रसः।।

अर्थात् यह रस मन की रजोगुणी और तमोगुणी वृत्तियों के विलीन होने पर सत्वगुण के उदय से उत्पन्न होता है। यह अखंड, स्वयं प्रकाश रूप और चेतन्य स्वरूप (चिन्मय) होता है। रसानुभूति के समय मन में रस के अतिरिक्त अन्य दूसरे विषयों का बोध नहीं रहता। यह ब्रह्मप्राप्ति के आनंद के समान है। यह अलौकिक (शुद्ध आनंदमय) चमत्कार से पूर्ण होता है, जिसकी अनुभूति कुछेक सहृदय (पाठक) ही कर सकते हैं। रसास्वाद के समय इसका भोक्ता (पाठक) इसे आत्मानंद के रूप में अनुभव करता है।

इस व्याख्या के अनुसार संक्षेप में रस का स्वरूप इस प्रकार है –

1. रस आस्वाद रूप है क्योंकि वह पाठक की आत्मा में पहले से विद्यमान रहता है, बाहर से नहीं आता। इसलिए वह आस्वाद्य न होकर स्वयं आस्वाद है।
2. वह अखंड है अर्थात रसानुभूति को अवयवों या खंडों में विभाजित करना असंभव है।
3. वह अन्य ज्ञान से रहित होता है। घनी रसानुभूति के क्षणों में चित्तवृत्ति इतनी एकाग्र हो जाती है कि सहृदय की चेतना में अन्य विषयों का प्रवेश ही नहीं होता।
4. वह स्व–प्रकाशानंद है : वह आत्मा में ही आत्मा का प्रकाश है।
5. वह चिन्मय है : अर्थात् चैतन्यावस्था है, ज्ञानशून्य स्थिति नहीं।
6. वह अलौकिक चमत्कार है : लौकिक सुख–दुखों से परे शुद्ध आनंद की चेतना है।
7. वह ब्रह्मानन्द के समान है।

रसावयव

रसावयवः रस की सामग्री को रसावयव कहते हैं। ये पाठक या सहृदय को सानुभूति कराने में ये सहायक होते हैं। रस के अवयव (अंग) चार हैं 1. स्थायी भाव 2. विभाव 3. अनुभाव और 4. संचारीभाव।

1. स्थायी भाव

सहृदय के अन्तःकरण में जो भाव वासना या संस्कार के रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। इन्हें रस की जड़ या मूल कहा जाता है। स्थायी भाव का अंकुर ही काव्य पढ़ने या नाटक देखने से रस के रूप में परिणत होता है। जिस प्रकार कच्चा चावल पकने की प्रक्रिया से गुजर कर भोजन के रूप में आस्वाद्य होता है, वैसे ही स्थायी भाव नाटकादि देखने से परिपक्व होकर रस की स्थिति में पहुँचता है। इन्हें स्थायी भाव इसलिए कहते हैं कि ये हृदय में स्थायी रूप से रहते हैं। कोई विरोधी या अविरोधी भाव उन्हें तिरोहित नहीं कर सकता।

स्थायी भावों की संख्या नौ हैः रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। इनके अतिरिक्त कुछ विद्वान वात्सल्य और ईश्वर–विषयक प्रेम को भी स्थायी भाव मानते हैं। इस प्रकार स्थायी भावों की संख्या ग्यारह हो जाती है।

2. विभाव

लोक में रति आदि स्थायी भावों को जगाने के कारणों को काव्य–नाटक आदि में विभाव कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– (क) आलंबन विभाव और (ख) उद्दीपन विभाव।

(क) आलंबन विभाव – जिस व्यक्ति या वस्तु के कारण रस उत्पन्न होता है, उसे आलंबन विभाव कहते हैं। जैसे, पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता को देखकर उसके प्रति राम के मन में रति–भाव जाग्रत होता है तो राम की रति का आलंबन सीता हुई।

(ख) उद्दीपन विभाव – रति आदि स्थायी भावों को उद्दीप्त (जगाने) करने के कारणों को उद्दीपन विभाव कहते हैं।

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत बाहरी परिस्थितियाँ तथा आलंबन की चेष्टाएँ आती हैं। जैसे शृंगार रस के उद्दीपन विभाग में, चाँदनी रात, एकान्त, मधुर संगीत, नायक–नायिका की वेशभूषा, शारीरिक चेष्टाएँ आदि आते हैं।

3. अनुभाव

स्थायी भावों की प्रकाशक आश्रय की शारीरिक चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं। ये भावों के बाद उत्पन्न होते हैं इसलिए इन्हें अनुभाव (अनु+भाव) कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है, 'आलंबन उद्दीपनादि अपने–अपने कारणों से उत्पंन भावों को बाहर प्रकाशित करने वाली लोक में जो कार्यरूप चेष्टाएँ होती हैं, वे ही काव्यनाटकादि में अनुभव कहलाती हैं।' जैसे, क्रोध में होठ फड़कना, भौहें तनना, संयोग शृंगार में अश्रु, स्वेद, रोमांच आदि अनुभाव कहलाएँगे।

अनुभावों के चार भेद हैं : 1. आंगिक–आश्रम की शारीरिक चेष्टाएँ 2. वाचिक–प्रयत्नपूर्वक वाणी का व्यापार 3. आहार्य– आरोपित या कृत्रिम वेष–भूषा 4. सात्विक–बिना बाहरी प्रयत्न के उत्पन्न होने वाली शारीरिक चेष्टाएँ। जैसे–स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, अश्रु, प्रलाप आदि।

4. संचारीभाव या व्यभिचारी भाव –

रस–निष्पत्ति के समय स्थायी–भाव तो सदैव जाग्रत रहते हैं, पर बीच–बीच में स्थायी भावों को पुष्ट करने के लिए अनेक भाव उठते और तिरोहित होते रहते हैं, उन्हें संचारी भाव कहते हैं। संचारी इन्हें इसलिए कहते हैं कि ये पानी के बुदबुदों के समान उठते और विलीन होते रहते हैं। स्थायी न होने और संचारणशील रहने के कारण ही इन्हे संचारी भाव कहते हैं।

संचारी भावों की संख्या तैंतीस मानी गई है, जो इस प्रकार है :–

1. निर्वेद 2. ग्लानि 3. विषाद 4. गर्व 5. मोह 6. मरण 7. मद 8. श्रम 9. शंका 10. अपस्मार (मानसिक व्याधि) 11. अवहित्था (लोकहित में भय, लज्जा आदि भाव छिपाना) 12. स्वप्न 13. स्मृति 14. हर्ष 15. धृति (धैर्य) 16. अमर्ष (अप्रिय व्यवहार से उत्पन्न असहनीयता) 17. जड़ता 18. चपलता 19. चिन्ता 20. ब्रीड़ा (लज्जा) 21. व्याधि 22. विबोध (चेतना) 23. वितर्क 24. निद्रा 25. असूया (दूसरे की उन्नति से उत्पन्न ईर्ष्या) 26. मति 27.दैन्य 28. त्रास 29. आवेग 30. उग्रता 31. आलस्य 32. औत्सुक्य 33. उन्माद।

आश्रयः जिसमें रस उत्पन्न होता है, उसे आश्रम कहते हैं। जैसे, शुकंतला को देखकर दुष्यंत में रति उत्पन्न होती है तो दुष्यंत शृंगार रस का आश्रय हुआ।

रसावयवों का उदाहरण :

देखन मिसु मृग विहग तरु, फिरै बहौरि–बहौरि
निरखि–निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ी प्रीति न थोरि।

यह शृंगार का उदाहरण है। प्रसंग है पुष्पवाटिका का। राम जनक के उपवन की शोभा देख रहे हैं। सीता गौरी पूजन के लिए वहाँ पहुँचती है। सीता उपवन के मृग आदि देखने के बहाने बार–बार उधर लौट कर राम की छवि को देखती है।

यहाँ राम आलंबन है। उनका सौन्दर्य, उपवन एकान्त आदि उद्दीपन हैं। बार–बार देखना अनुभाव है। उत्कंठा संचारीभाव है। इन सबके संयोग से आश्रय सीता में शृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

रस–प्रक्रिया

इस सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि काव्य पढ़ने या नाटक देखने से पाठक (दर्शक) को रसानुभूति कैसी होती है ? विद्वानों ने इस प्रश्न का अनेक प्रकार से उत्तर दिया है, जिसका यहाँ संक्षेप में विवेचन किया जाता है :–

इस निष्पत्ति के संबंध में भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में यह सूत्र दिया है :–

'विभावानुभाव–संचारिभाव–संयोगात् रसनिष्पत्तिः

अर्थात् विभाव, अनुभव और संचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। इस सूत्र के चार प्रमुख व्याख्याकार है, जिनके मतों का सारांश नीचे दिया जा रहा है –

1. भट्ट लोल्लट (उत्पत्तिवाद) :

भरत के सूत्र के प्रथम व्याख्याकार भट्ट लोल्लट है। वे रस की मूल स्थिति ऐतिहासिक पात्रों (राम, दुष्यंत आदि) में मानते हैं। अभिनेता उन पात्रों का अभिनय इस कौशल से करता है कि दर्शक मूल पात्र की स्थिति का आरोप अभिनेता में कर लेता है। अभिनेता को इस दशा में देखकर दर्शक मानवीय सहानुभूति या भावना से प्रेरित होकर स्वयं भी रसानुभूति करने लगता है।

2. शंकुक (अनुमितिवाद) :

शंकुक भी मूल रस की स्थिति ऐतिहासिक, व्यक्तियों में ही मानता है। उसने ''चित्रतुरंग न्याय' से अपने मत को स्पष्ट करते हुए कहा कि जैसे चित्र–लिखित घोड़े को देखकर दर्शक अनुमान से उसे ही घोड़ा समझ लेता है, वैसे ही दर्शक अभिनेता में मूल पात्रों का अनुमान कर

लेता है। अभिनेता अपने नाटकीय कौशल से अपने आपको ऐतिहासिक पात्रों के रूप में प्रदर्शित करने में सफल होता है। अतः दर्शक उसी के भावों के साथ तादात्म्य स्थापित कर रसानुभूति में लीन हो जाता है। ये दोनो मत इसलिए मान्य नहीं है कि ये रस की सत्ता दर्शक या सामाजिक में न मानकर ऐतिहासिक पात्रों या अभिनेता में स्वीकार करते हैं।

3. भट्ट नायक (भुक्तिवाद) :

भट्ट नायक रस की न तो उत्पत्ति मानते हैं और न अनुमिति (अनुमान) बल्कि उसकी भुक्ति (भोग) मानते हैं। उन्होंने पहली बार सहृदय या सामाजिक में रस की सत्ता मानी। उन्होंने कहा कि पहले दर्शक भावकत्व व्यापार से अभिनेताओं को विशेष व्यक्ति न मानकर साधारण नर–नारी के रूप में देखता है। इससे उसकी भावनाओं का साधारणीकरण हो जाता है। इसके बाद वह भोजकत्व व्यापार से रस का आस्वादन करता है।

4. अभिनवगुप्त (अभिव्यक्तिवाद) :

अभिनवगुप्त ने भट्ट नायक के भावकत्व और भोजकत्व नामक दो व्यापारों की कल्पना को निरर्थक बताकर उनके स्थान पर व्यंजना–व्यापार की कल्पना की। अभिनवगुप्त ने स्थायीभाव की स्थिति दर्शक में मानी। उसने कहा कि सहृदय या दर्शक में स्थायी भाव सदैव रहता है। काव्य नाटकों को पढ़ सुनकर उसके हृदय में स्थित स्थायीभाव उद्‌बुद्‌ध (जाग्रत) होकर रस के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे मिट्‌टी के कोरे घड़े में पानी डालते ही उसके भीतर की गंध बाहर अभिव्यक्त हो जाती है, वैसी ही दर्शक के अंतकरण में स्थित सुप्त स्थायीभाव काव्य के माध्यम से जागकर रस में परिणत हो जाता है, जिससे दर्शक आंनदित हो जाता है। इसे ही रसनिष्पित्ति कहते हैं।

रस–भेद

रस को काव्य की आत्मा माना गया है। काव्य नाटक आदि पढ़ने–सुनने से जिस अलौकिक आनंद (लौकिक सुख–दुःख से ऊपर की स्थिति) की प्राप्ति होती है, उसे रस कहते हैं। आचार्यों ने अपने–अपने विचार से रीति, वक्रोक्ति, अलंकार, औचित्य, ध्वनि आदि को काव्य की आत्मा सिद्‌ध करने का प्रयास किया, पर उनमें से रस और ध्वनि की जैसी प्रतिष्ठा किसी को नहीं मिली। वे काव्य के बहिरंग पक्ष से आगे नहीं बढ़ सके। इस प्रकार हमारे यहाँ रस या भाव को ही काव्य के अंतरंग तत्व के रूप में मान्यता मिली, शेष सभी को कलापक्ष के अन्तर्गत माना गया। रस को अलौकिक आनंद कहकर सारी लौकिक अनुभूतियों से इसे विशिष्ट बताया गया है।

प्रमुख रस

काव्य–शास्त्र के प्रारम्भिक युग से लेकर आज तक विभिन्न प्रकार के वाद विवाद के पश्चात् रसों के दस भेद स्वीकार कर लिए गए। ग्यारहवें भक्ति रस पर अभी तक कोई आम निर्णय नहीं हो सका है। रस के दस भेद इस प्रकार है :–

	स्थायीभाव	रस
1–	रति	शृंगार रस
2–	उत्साह	वीर रस
3–	हास	हास्य रस

4–	क्रोध	रौद्र रस
5–	भय	भयानक रस
6–	जुगुप्सा	वीभत्स रस
7–	शोक	करुण रस
8–	विस्मय	अद्‌भुत रस
9–	निर्वेद	शान्त रस
10–	वात्सल्य	वत्सल रस
11–	ईश्वर विषयक प्रेम	भक्ति रस

शृंगार रस :

शृंगार रस के दो भेद हैं : संयोग और विप्रलंभ। संयोग– शृंगार और वियोग–शृंगार।

संयोग–शृंगार : संयोग–शृंगार वहाँ होता है जहाँ नायक–नायिका की मिलन अवस्था का वर्णन किया गया हो। इसमें नायक–नायिका के परस्पर हास–विलास, स्पर्श आदि का वर्णन रहता है। इसका स्थायीभाव रति है। शृंगार रस में नायक और नायिका एक दूसरे के आलंबन होते हैं।

उदाहरण–

कहुँ बाग तडाग तरंगिनी तीर तमाल की छाँह विलोकि भली।
घटिका यक बैठत है सुख पाय बिछाय तहाँ कुस कास थली।।
मग को श्रम दूर करैं सिय को शुभ वल्कल अंचल सौं।
श्रमतेउ हरैं तिन को कहि केशव चंचल चाक दृगंचल सौं।।

इस पद में राम और सीता के परस्पर अनुराग का चित्रण किया गया है। राम और सीता एक दूसरे की रति के आलंबन है। बाग, तड़ाग, नदी, किनारा आदि बाह्य उद्‌दीपन विभाव है व राम का वल्कल से हवा करना उद्‌दीपन–विभाव है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से उदबुद्‌ध रति स्थायीभाव परिपक्व होकर संयोग शृंगार के रूप में आस्वादित होता हुआ आनंद देता है।

वियोग–शृंगार : वियोग–शृंगार वहाँ होता है जहाँ नायक और नायिका में परस्पर उत्कट प्रेम होने पर भी उनका मिलने नहीं हो पाता। संयोग और वियोग एक दूसरे के विपरीत होते हैं। फलतः इनके अनुभावों और संचारी भावों में भी अन्तर पाया जाता है।

उदाहरण :

हा! गुण–खानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता
लछिमन समुझाये बहु भांति। पूछत चले लता तरु पाँती।।
हे खग मृग हे मधुकर स्रैनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।
किमि सहि जात अनख तोहिं पाही। प्रिया वेगि प्रगटसि कस नाहीं।।

सीता–हरण के पश्चात् राम स्वर्ण–मृग को मारकर लौटते हैं और कुटी को सीताविहीन पाते हैं। राम सीता के गुणों का वर्णन करते हुए पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों से सीता के संबंध में पूछताछ करते हैं तो कभी सीता से शीघ्र प्रकट हो जाने के लिए प्रार्थना करते हैं।

राम आश्रय हैं। सीता आलंबन है तथा शून्य स्थान उद्दीपन विभाव है। सीता की खोज में निकलना, पशु–पक्षियों से पूछना आदि अनुभाव है। उन्माद संचारीभाव है।

वीररस

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है। शत्रु, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यश आदि आलंबन है। चेष्टा–प्रदर्शन, ललकार आदि उद्दीपन है। आँखों का लाल होना, भुजाओं या अंगों का संचालन आदि अनुभाव है। गर्व, उग्रता, धैर्य, तर्क, असूया आदि संचारीभाव हैं।

उदाहरण–

डहडहे डंकन को सबद निसंक होत
वह बही सत्रुन की सेना जोर सरकी।
'हरिकेस' सुभट घटान की उमंडि उत
चम्पति को नन्द कोप्यो उमंग समर की।
हाथिन की मन्द मारू राग की उमंड त्यों
त्यों लाली झलकत मुख छत्रसाल वर की।
फरकि फरकि उठै बाहैं अस्त्र बाहिबे को
करकि करकि उठैं करी बखतर की।।

यहाँ उत्साह स्थायीभाव है। यह उत्साह युद्ध के लिए है। अतः यहाँ युद्ध वीर रस है। आलम्बन शत्रु है। शत्रु की सेना का आगे बढ़ना उद्दीपन है। भुजाओं का फड़क उठना अनुभाव है। क्रोध, रोमांच, उग्रता आदि संचारीभाव है।

हास्य रस

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँच कर यह सहृदय सामाजिकों को हास्य रस का आस्वादन कराता है। हास्य रस में आश्रय और अनुभावों का चित्रण नहीं होता, क्योंकि इसमें विकृत प्रकृति या वेशभूषा की अभिव्यक्ति विनोदात्मक होती है। फलतः कवि ही उस उक्ति का आश्रय रहता है।

विकृत वेशभूषा, विकृत वाणी या विकृत रूप वाले व्यक्ति ही हास्य रस के आलंबन होते हैं।

उदाहरण–

हँसि–हँसि भाजैं देखि दूलह दिगम्बर को
पाहुनी जे आवै हिमाचल के उछाह मैं।
कहै 'पदमाकर' सुमाहू सौं कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह में।
मगन भयेई हँसै नग्न महेस ठाढ़े,
और हँसे एऊ हँसि–हँसि के उमाह में।
सीस पर गंगा हँसै, भुजनि भुजंगा हँसे,
हास ही को दंगा भयौ नंगा के बिबाह मैं।

यहाँ शिव–पार्वती विवाह अवसर पर शिव के दूल्हा वेश का वर्णन किया गया है। यहाँ शिव आलंबन हैं। उक्त पंक्तियों में इस प्रकार विभाव अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से हास स्थायी भाव सामाजिकों के हृदय में उद्‌बुद्‌ध होकर आनन्दित करता है।

रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से वासना रूप से सामाजिकों के हृदय में स्थित क्रोध स्थायी भाव आस्वादित होता हुआ रौद्र रस में परिणत हो जाता है। अपराधी कपटाचरण, छल, देशद्रोह, जातिद्रोह आदि करने वाले व्यक्ति इसके आलंबन होते हैं। शत्रु भी क्रोध स्थायी भाव का आलम्बन हो जाता है।

आलम्बन के किए गए अपराध, उसके कटुवचन, आँखें दिखाना आदि चेष्टा उद्‌दीपन हैं। आँखे लाल होना, दाँत पीसना, शरीर का कम्पन होना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, मद, गर्व, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

उदाहरण–

सुनत लखन के वचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा।
अब जनि देउ दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक बध जोगू।।
राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुस्काने।
हँसत देख नख–शिख रिसव्यापी। राम! तोर भ्राता बड़ पापी।।
बोरौं सबै रघुवंा कुठार की, बार में बारन बारज सरत्थहिं।
बन की वायु उड़ाय कै लक्ष्मण लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भार में भूंजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करो दसरत्थहिं।।

इन पंक्तियों में क्रोध स्थायी भाव के आश्रय परशुराम हैं। राम आलंबन हैं। यद्‌यपि पंक्तियों में उद्‌दीपन कथन नहीं है, फिर भी शिवधनुष का तोड़ना और सीता से विवाह कर लेना उद्‌दीपन विभाव अनुमानित है। रघुवंश का नाश करूँगा, भरत को भून डालूँगा आदि कथन अनुभाव हैं।

भयानक रस

विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से जब सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप से विद्‌यमान भय स्थायीभाव उद्‌बुद्‌ध होकर रसरूप में परिणत होता है, तब वहाँ भयानक रस होता है।

आश्रय : भयानक, त्रासदायक व्यक्ति या वस्तु का द्रष्टा कोई भी व्यक्ति।

आलंबन : भयदायक व्यक्ति या वस्तु, जैसे : सिंह, व्याघ्र, सर्प, आग, नदी की बाढ़, त्रासदायक उलूक आदि की ध्वनि, भूत–प्रेत की आशंका, शून्यगृह, एकान्त भयदायक स्थान आदि अनेक विद्रूप वस्तुएँ उसकी आलंबन हो सकती हैं।

उद्दीपन : भयदायक व्यक्तियों को चेष्टाएँ, यथा सिंह की दहाड़, व्याघ्र की गर्जना आदि।

अनुभावः काँपना, पसीना आ जाना, रोमांचित हो जाना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : शंका, त्रास, चिन्ता आदि संचारी भाव इसको पुष्ट करते हैं।

उदाहरण :

रानी अकुलानी सब डाढत परानी जाह,
सकै न विलोक भेष केसरी कुमार को।
मीजि–मीजि हाथ धुनि माथ दशमाथ तिय,
तुलसी असबाब डारौ, मन काढ्यौं तैन काढ्यौं,
जिय की परी सम्भारै सहन भंडार कौ,
खीजति मंदौवे सविषाद देखि मेघनाद,
बयो लुनियत सब याही डाढी जार कौ।।

उक्त पंक्तियों में हनुमानजी के रौद्र रूप को देखकर लंकावासियों की दशा का वर्णन किया गया है।

वीभत्स रस

घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा सुनकर 'जुगुप्सा' स्थायी भाव उद्‌बुद्‌ध होता है जो सम्बद्‌ध विभावानुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचकर वीभत्स रस में परिणत हो जाता है।

घृणास्पद वस्तुओं का द्रष्टा या पाठक ही उसका आश्रय होता है। मैली वेशभूषा, मांस, रक्त आदि आलंबन है। कीड़े आदि पड़ जाना, कुलबुलाना आदि उद्‌दीपन है। नाक, भौं चढ़ाना आदि अनुभाव हैं। मोह, अपस्मार, निर्वेद आदि संचारी भाव है।

उदाहरण :

औझरी की झोरी काँधे, आँतन की सेल्ही बाँधे,
मूंड को कमण्डल खप्पर कियो कोरिकै।
ज्योगिनी झंटुग झुण्ड झुण्ड बनी तापसी सी,
तीर तीर बैठी है समर–सरि खोरि कै।
सेनित सौं सानि–सानि गूढ खात सेतुवा से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि–घोरि कै।
तुलसी बेताल भूत साथ लिये भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत है हाथ–हाथ जोरि कै।।

करुण रस

सम्बद्‌ध विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से सहृदय के हृदय में वासना रूप से स्थित शोक स्थायी भाव का आश्रय होता है। शोक स्थायी भाव परिपक्व अवस्था में पहुँचकर करुण रस में परिणत हो जाता है।

प्रियजन का नाश, ऐश्वर्य, घर, वाहन, वस्तु आदि का नाश। इसके अतिरिक्त दीन–हीन अवस्था को प्राप्त कोई व्यक्ति या राष्ट्र आदि भी करुण रस के आलंबन हो सकते हैं। प्रियजन का शव–दर्शन, उसका चिता में जलना आदि सभी उद्‌दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं।

गुणकथन, रोना, भाग्य को कोसना आदि अनुभाव हैं।

निर्वेद, मोह, विषाद, जड़ता आदि संचारी भाव हैं।

उदाहरण :

(क) मेरे हृदय के हर्ष हा! अभिमन्यु अब तू है कहाँ।
दृग खोल कर बेटा, तनिक तो देख हम सबको यहाँ।।
मामा खड़े हैं पास तेरे, तू यहीं पर है पड़ा।
निज गुरुजनों के मान को तो, ध्यान था तुझको बड़ा।।
व्याकुल तनिक भी देख कर तू धैर्य देता था मुझे।
पर आज मेरे पुत्र प्यारे! हो गया है क्या तुझे।।
धात्री सुभद्रा को समझ कर माँ मुझे था मानता।
पर आज तू ऐसा हुआ मानो न था पहचानता।।

इन पंक्तियों में शोक स्थायी भाव की आश्रय द्रौपदी है। अभिमन्यु इसका आलंबन है।

अद्‌भुत रस

अद्‌भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। आश्चर्यजनक व्यक्तियों, वस्तुओं, विचित्र दृश्यों एवं अलौकिक वस्तु या घटना के द्वारा अद्‌भुत रस की उत्पत्ति होती है। सम्बद्‌ध विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से सहृदय सामाजिक के हृदय में वासना रूप में स्थित विस्मय स्थायी जब आस्वाद का रूप धारण कर लेता है तब अद्‌भुत रस की निष्पत्ति होती है।

आलंबन : अलौकिक व्यक्ति, वस्तु या घटना, विचित्र दृश्य तथा आकस्मिक मनोरथ सिद्ध इसके आलम्बन हो सकते हैं। उसके गुणों का श्रवण, उसके विभिन्न रूप में तथा आश्चर्यजनक वस्तु का विवेचन उद्‌दीपन है।

अनुभाव : स्तम्भ, स्वेद् रोमांच आदि अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

उदाहरण :

केसव कहि न जाय का कहियै।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मन ही मन रहियै।।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिन लिखा चितेरे।
धौये मिठे न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे।।
रवि–कर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेही माही।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।।
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।

एक अन्य उदाहरण:

अखिल भुवन चर अचर सब हरि–मुख में लखियात।
चकित भई गद् गद् वचन, विकसित दृग पुलकात।।

शान्त रस

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है। 'शम' को शांत रस का स्थायी भाव मानते हैं किंतु कुछ आचार्य 'निर्वेद' की गणना संचारी भावों के अन्तर्गत करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'शम' को

स्वात्मविश्रांति के रूप में माना है, जबकि अन्य आचार्यों ने निर्वेद को ज्ञानजन्य वैराग्य का रूप माना है और तर्क दिया है कि संसार की असारता के प्रति दृढ़ धारणा के बिना शांतरस का जन्म ही नहीं हो सकता है। अतः निर्वेद को ही शान्त रस का स्थायी भाव मानना चाहिए।

सम्बद्ध विभाव अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में स्थित निर्वेद स्थायी भाव उद्‌बुद्‌ध होकर रस रूप में परिणत होता है।

आश्रय : उत्तम प्रकृति का सत्वगुण वाला व्यक्ति होता है।

आलंबन : अनित्य एवं असार रूप से ज्ञात संसार या परमात्मा चिन्तन अथवा संसार की असारता का ज्ञान।

उद्दीपन : तीर्थ–स्थान, साधु संतों के आश्रम, दर्शनों में अभिरुचि, मुख्यतः वेदांत दर्शन का श्रवण, वीतराग सिद्ध महात्माओं के दर्शन एवं सत्संग, शास्त्र–परिशीलन, जरा, मृत्यु, रोग, शोक आदि का अनुभव अथवा प्रदर्शन।

अनुभावः विषयों में अरुचि प्रकट करना, संन्यास ग्रहण करना, संसार को छोड़कर भाग जाना, गृहत्याग करना, समभाव की अभिव्यक्ति, रोमांच, संसार की अनित्यता अथवा असारता का वर्णन करना, ईश्वर के दर्शन को प्राप्त करने का प्रयास करना आदि अनुभाव होते हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, हर्ष स्मरण, विबोध, मति, धृति आदि संचारी भाव कहे गए हैं।

उदाहरण :

शापित–सा मैं जीवन का यह, ले कंकाल भटकता हूँ।
उसी खोखलेपन में जैसे कुछ खोजता अटकता हूँ।
अन्ध तमस है किन्तु प्रकृति का आकर्षण है खींच रहा।
सब पर, हाँ अपने पर भी, मैं झुंझलाता हूँ खीस रहा।

एक अन्य उदाहरण–

हाथी न साथी न घोरे न चेरे, न गांव न ठांव को नाँव विलैहें।
ताल न मात न मित्र न पुत्र न, वित्त न अंग के संग रहै हैं।
केशव काम को राम विसारत, और निकाम से काम न ऐ हैं।
चेत रे चेत अजौं चित अन्तर, अन्तक लोक अकेलोई जेहैं।

इन पंक्तियों में शुभेच्छा अथवा निर्वेद स्थायी भाव का आश्रय है। यह असार एवं अनित्य रूप से ज्ञात संसार ही इसका आलंबन विभाव है। संसार की क्षणभंगुरता, अनित्यता ही इसका उद्‌दीपन विभाव है।

वत्सल रस

वत्सल रस का स्थायी भाव वात्सल्य है। बच्चों का तुतलाकर बोलना, उनकी घर के आँगन में भरी जाने वाली किलकारियाँ एवं अबोध कार्य वत्सल रस के उत्पादक कारण हैं।

संस्कृत के आचार्यों ने इस रस पर विचार–विमर्श नहीं किया है, हिंदी के समीक्षकों ने ही वत्सल रस को स्वीकार किया है।

आश्रम : माता–पिता एवं ज्येष्ठ बन्धु–बान्धव इसके आश्रय होते हैं।

आलम्बनः बालक या शिशु, पशु–पक्षियों के छोटे बच्चे भी इसके आलंबन हो सकते हैं।

उद्दीपन : बच्चे की भोली–भाली चेष्टाएँ, तुतली बोली, अबोध जिज्ञासाएँ, घुटनों के बल चलना, रेंगना, अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने की अथवा अपनी मनोनुकूल वस्तु की प्राप्ति के लिए हठ करना, किलकारियाँ भरना, खेलना–कूदना, गिर पड़ना आदि अनेक स्थितियाँ उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आती हैं।

अनुभवः माता–पिता आदि का हँसना, प्रफुल्लित होना, गोद में बैठना, चूमना, पालने आदि में झुलाना अनुभाव है।

संचारी भाव : हर्ष, औत्सुक्य, मति आदि संयोग और विषाद, चिन्ता, जड़ता आदि वियोग में संचारी भाव होते हैं।

उदाहरणः

"किलक अरे मैं नेक निहारूं।
इन दाँतो पर मोती वारूं।
पानी भर भर आया फूलों के मुँह में आज सवेरे,
हाँ, गोपा का दूध जमा है राहुल! मुख में तेरे।
लटपट चरण, चाल अटपट सी मनभायी है, मेरे,
तू मेरी अंगुली धर, अथवा मैं तेरा कर धारूं।।

एक अन्य उदाहरण :

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कुछ गावै।।
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुलावै।
तू काहे न बेगि सों आवै, तोकों कान्ह बुलावै।।
कबंहुँ पलक हरि मूंद लेत है, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन हैं रहि रहि करि करि सैन बतावै।।
इहि अन्तर अकुलाय उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावै।।

वत्सल रस के दो भेद किए गए हैं :

1. **संयोग** :– शिशु माता–पिता के पास रहता है और उनके सान्निध्य में फलता–फूलता है। उसकी चेष्टाओं से प्रत्यक्ष आनंद की अनुभूति होती है।

2. **वियोग** :– माता–पिता से बच्चे के बिछुड़ जाने पर विरहित अवस्था में वियोग वात्सल्य रस का जन्म होता है।

भक्ति–रस

आचार्य जगन्नाथ ने भक्तिरस की सर्वप्रथम व्याख्या की है।

स्थायी भावः भगवत्प्रेम।

आलम्बन : ईश्वर अथवा उसका कोई रूप।

उद्दीपन : पुराण या भक्ति–साहित्य का अध्ययन या श्रवण।

अनुभाव : रोमांचादि।

संचारी भाव : हर्ष, दैन्य आदि इसके संचारी भाव हैं। आचार्य भानुदत्त ने भक्ति को अलौकिक रस के रूप में स्वीकार किया।

भक्ति को शांत रस के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता, क्योंकि शांत निर्वेद अथवा वैराग्य पर आश्रित है और भक्ति अनुराग पर।

दैन्य, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव है।

उदाहरण :

बसौं मोरे नैनन में नन्दलाल।
मोहिनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नुपूर सबद रसाल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भक्त बछल गोपाल।

•••

छंद

जिस शब्द योजना में वर्णों या मात्राओं और यति–गति का विशेष नियम हो, उसे छंद कहते हैं।

सब विद्याओं के मूल वेद के छह अंग माने जाते हैं, जिनमें से एक अंग छंद–शास्त्र भी है। जिस प्रकार भौतिक जगत में बिना पैरों के मनुष्य पंगु कहलाता है उसी प्रकार काव्य–रूपी सृष्टि मे छंद के ज्ञान के बिना न तो काव्य का यथार्थ बोध कर सकता है और न शुद्ध एवं श्रेष्ठ काव्य की रचना ही कर सकता है। आधुनिक कविता में परंपरागत छंद का बंधन मान्य नहीं है। उसमे मुक्त छंद का प्रयोग होता है। फिर भी प्रत्येक कविता में छंद 'लय' के रूप में अवश्य विद्यमान रहता है।

छंद का अर्थ :

बहुत से विद्वानों ने छंद को पद्य का पर्याय माना है। विश्वनाथ के अनुसार 'छन्दोबद्ध पदं पदाम्' अर्थात विशिष्ट छंद में बँधी हुई रचना को छंद कहा जाता है। छंद ही वह तत्व है , जो पद्य को गद्य से भिन्न करता है। छंद शब्द की व्युत्पत्ति छद् धातु से मानी जाती है, जिसके दो अर्थ लिए जाते हैं–

1. 'आच्छादन या आवृत्त करना (छंदि संवरणे) : इसका आशय यह है कि छंद शब्द और अर्थ की दरारें भर कर कथन को पाठक या श्रोता तक प्रभावशाली ढंग से पहुँचाने में सहायक होता है।
2. 'आह्लादित या दीप्त करना (छंदि आह्लादने दीप्तौ च)' : तात्पर्य यह है कि छंद कविता में नाद–सौंदर्य और संगीतात्मकता उत्पन्न कर पाठक में आनंद की वृद्धि करता है। लय और उसके विशिष्ट रूप में एक ही प्रकार की ध्वनियों की आवृत्ति बार–बार सुनसे से श्रोता आनंदित होता है।

काव्य के भेद :

काव्य के मुख्य दो भेद होते हैं : 1. पद्य 2. गद्य । विचारों या भावों की अभिव्यक्ति मौखिक भी हो सकती है और लिखित भी। अभिव्यक्ति के उपर्युक्त दोनों ही प्रकारों को ''रचना'' कहा जाता है। रचना जब छंद के नियमों में बँधी होती है तब उसे ''छंदोमयी रचना '' कहा जाता है। रचना जब छंद के नियमों में बँधी हुई नहीं होती है तब उसे ''छंदोविहीन रचना '' कहा जाता है। छंदोमयी रचना को ''पद्य'' कहते हैं और छंदोविहीन रचना को ''गद्य''। आजकल पद्य में छंद का प्रयोग आवश्यक नहीं है। कवि पंत ने 'युगवाणी' में कविता को छंद से मुक्त करने की घोषणा करते हुए कहा था : 'खुल गये छंद के बंध'। आधुनिक कवियों ने पहले से चले आ रहे छंदों में कविता न कर स्वनिर्मित मुक्त छंद में रचना करना प्रारम्भ किया। मुक्त छंद में एक लय होती है, पर उसमें वर्णों और मात्राओं की निश्चित संख्या और क्रम नहीं होते। वस्तुतः कविता में छंद या लय का होना आवश्यक है। यह लय ही पद्य को गद्य से भिन्न करती है।

मात्रा :

वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उस समय या काल को ''मात्रा'' कहा जाता है। जितना काल लघु वर्ण के उच्चारण में लगता है, उसकी एक मात्रा मानी जाती है। जितना काल गुरू वर्ण के उच्चारण में लगता है उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं। गणना के समय लघु को (।) चिह्न से तथा गुरू को (ऽ) चिह्न से प्रकट किया जाता है। उच्चारण में लगने वाले समय की दृष्टि से वर्ण भी दो प्रकार के होते हैंः ह्रस्व व दीर्घ।

लघु वर्ण : अ, इ, उ, ऋ, क, कि, कु, कू

। , । , । , । , । , । , । , ।

दीर्घ वर्ण : आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः

ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ,

का, की, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः

ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ, ऽ,

उदाहरण :

।। ।

1. चरण = तीन मात्राएँ

ऽ ऽ

2. ज्योत्स्ना = चार मात्राएँ

ऽ।।

3. मंगल = चार मात्राएँ ।

यति :

छंद के पढ़ते समय नियमानुसार निश्चित स्थान पर कुछ ठहराव को यति कहते हैं। इस विराम या यति को प्रकट करने के लिए पूर्ण विराम या अद्‌र्ध–विराम अथवा अल्प विराम के चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। यति से छंद की गति में तो थोड़ा विराम आता है, पर उच्चारण में वक्ता को थोड़ा विश्राम मिलने से छंद का नाद–सौंदर्य और निखर जाता है। जैसे :–

श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।

ऽ ।। ।।। । ऽ । ।। ।। ।। ।। । ऽ ।

यहाँ दोहा छंद में तेरह और ग्यारह मात्राओं पर नियमानुसार यति या विराम दिया गया है।

गति :

प्रत्येक छंद की अपनी लय होती है। उस लय से छंद को पढ़ने में मधुरता आती है। छंद की उस लय को ''गति'' कहते हैं। इस प्रकार निश्चित वर्णों या मात्राओं तथा यति से नियंत्रित छंद की लय या प्रवाह को गति कहते हैं। गति छंद–विशेष के नाद–सौंदर्य की ही नहीं, उसके स्वरूप की भी परिचायक है। वर्णों और मात्राओं का क्रम बदल देने पर उस छंद की गति भंग होती है और उसका निश्चित स्वरूप भी बाधित होता है।

तुक :

छंद के चरणों की अंतिम ध्वनि की समानता को तुक कहते हैं। जिन छंदों के चरणों की अंतिम ध्वनियाँ मिलती हैं, उन्हें तुकांत और जिनकी नहीं मिलती हैं उन्हें अतुकांत छंद कहते हैं।

दीपक के जीवन में आली,
फिर भी है जीवन में लाली।

गण :

तीन वर्णों के समूह को 'गण' कहते हैं। जैसे ''भारत'' शब्द में तीन वर्ण होने से यह एक गण है। परन्तु ''भारतीय'' में चार वर्ण हैं। अतः ''भारती'' में ''भारती'' तक एक गण हुआ। गण के निर्धारण में पूरे–पूरे तीन वर्णों को लेते हैं अर्थात् हलन्त व्यंजनों को नहीं गिना जाता।

गणों के भेद :

गण आठ होते हैं । जो निम्नलिखित हैं–

	नाम	मात्रा–चिह्न	वर्ण–रूप	उदाहरण
1.	यगण	। ऽ ऽ	यमाता	भवानी
2.	मगण	ऽ ऽ ऽ	मातारा	मायावी
3.	तगण	ऽ ऽ ।	ताराज	आदित्य
4.	रगण	ऽ । ऽ	राजभा	भारती
5.	जगण	। ऽ ।	जभान	मिलाप
6.	भगण	ऽ । ।	भानस	भारत
7.	नगण	। । ।	नसल	कमल
8.	सगण	। । ऽ	सलगा	सरिता

गणों को याद रखने के लिए निम्नलिखित सूत्र उपयोगी है–

य–मा–ता–रा–ज–भा–न–स–ल–गा

जिस गण का मात्रा–चिह्न ज्ञात करना हो उस गण के प्रथम वर्ण के आगे के दो वर्णों को सहित ऊपर लिखे सूत्र से तीन वर्णों का समूह लेते हैं। जैसे – मगण का मात्रा–चिह्न ज्ञात करना है, तो मा से शुरु कर आगे के दो वर्णों सहित मातारा रूप प्राप्त हुआ।

मगण = मातारा (ऽ ऽ ऽ)

छंदों के भेद :

छंद दो प्रकार के होते हैं :

1. वर्णिक छंद 2. मात्रिक छंद।

वर्णिक छंदों में वर्णों की संख्या निश्चित रहती है तथा लघु–गुरु का स्थान भी नियत होता है। मात्रिक छंदो में वर्णों की संख्या की स्वतंत्रता रहती है और मात्राओं की संख्या नियत होती है।

मात्रिक व वर्णिक छंदों के फिर सम–विषम पदो ंके आधार पर तीन–तीन भेद होते हैं। जैसे – मात्रिक सम छंद, मात्रिक अर्धसम छंद व मात्रिक विषम छंद।

कतिपय छंदों का परिचय

दोहा (मात्रिक अर्धसम छंद)

लक्षण :

1. विषम (पहले व तीसरे) चरणों में 13–13 मात्राएँ।
2. सम (दूसरे व चौथे) चरणों में 11–11 मात्राएँ।
3. विषम चरणों के अंत में गुरु–लघु (ऽ।) न हों।

उदाहरण :

ऽ । । ।।। । ऽ। ।। । । ।। । ।। । ऽ।
श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
।।।। । ।।। । ।। ।। ऽ ऽ। । । । ऽ।
वरनउँ रघुवर विमल यशु, जो दायक फल चारि ।।

सोरठा (मात्रिक अर्धसम छंद)

लक्षण :

1. विषम (पहले व तीसरे) चरणों में 11–11 मात्राएँ।
2. सम (दूसरे व चौथे) चरणों में 13–13 मात्राएँ।
3. तुक विषम चरणों में मिलती है।
4. यह छंद दोहा का उल्टा होता है।

उदाहरण :

। । । ऽ । ।। ऽ। । । । ऽ। ऽ।। । ।।
अस विचार मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल ।
।।। ऽ । ।। ऽ। । । ऽ।। ऽ ।। । ।।
भजहु राम रघुवीर, करुनाकर सुन्दर सुखद ।।

चौपाई (मात्रिक सम छंद)

लक्षण :

1. इसके प्रत्येक चरण में 16–16 मात्राएँ।
2. चरण के अंत में गुरु–लघु (ऽ।) न हों।
3. चरण के अंत में दो गुरु या दो लघु हों।

उदाहरण :

ऽ ।। ।। । । ऽ।। ऽ ऽ
मंगल भवन अमंगल हारी,
।।। । ।।।। । ।। । ऽ ऽ
द्रवहु सु दशरथ अजिर बिहारी।

रोला (मात्रिक सम छंद)

लक्षण :

1. इसके प्रत्येक चरण में 24–24 मात्राएँ।
2. चरण में 11 व 13 मात्राओं के क्रम से यति।

उदाहरण :

ऽ ।। ।। ऽ ।ऽ ।ऽ ।। ऽ। ।ऽ ऽ
नन्दन वन था जहाँ, वहाँ मरुभूमि बनी है।
।ऽ ।।। ऽ ऽ। ।ऽऽऽ। ।ऽ ऽ
जहाँ सघन थे वृक्ष, वहाँ दावाग्नि घनी है।
जहाँ मधुर मालती, सुरभि रहती थी फैली।
फूट रही है आज, वहाँ पर फूट विषैली।

मन्दाक्रान्ता

(मन्दाक्रान्ता श्रुति रस ऋषि मा–भ–ना–ता–त–गा–गा)

लक्षण :

1. इसके प्रत्येक चरण में 17 वर्ण।
2. प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, दो तगण और अंत में दो गुरु वर्ण।
3. यति 4, 6, 7 वर्णों पर होती है।

उदाहरण :

ऽऽऽऽ ।। ।। ।ऽ ऽ ।ऽऽ। ऽऽ
तारे डूबे, तम टल गया, छा गयी व्योम लाली।
पक्षी बोले, तमचुर जगे, ज्योति फैली दिशा में।
शाखा डोली,तरुनिचय की, कंज फूले सरों में।
धीरे–धीरे, दिनकर कढ़े, तामसी रात बीती।

शिखरिणी

(रस रुद्रों से छिन्न शिखरिणी य–म–न–स–भ–ल–गा)

लक्षण :

1. इसके प्रत्येक चरण में 17 वर्ण।
2. प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण भगण और अंत में लघु–गुरु वर्ण।
3. यति 6, 11 वर्णों पर होती है।

।ऽऽ ऽऽऽ ।।। ।।ऽऽ।।। ऽ
अनूठी आभा से, सरस– सुषमा से सुरस से ।
बना देती थी बहु गुणमयी भू विपिन को।

निराले फूलों की विविध दलवाली अनुपमा।
जड़ी बूटी हो हो बहु फलवती थी बिलसती।

वसन्ततिलका

(वसन्ततिलका त–भ–ज–ज–गा–गा)

लक्षण :

1. इसके प्रत्येक चरण में 14 वर्ण।
2. प्रत्येक चरण में क्रमषः तगण, भगण, जगण, जगण और अंत में दो गुरु वर्ण।

उदाहरण :

ऽ ऽ। ऽ ।। । ऽ। । ऽ । ऽ ऽ
थे दीख ते पर म वृद्ध नितान्त रोगी
या थी नवागत वधू गृह में दिखती।
कोई न और इनको तज के कहीं था।
सूने सभी सदन गोकुल के हुए थे।।

मालिनी

(न–न–म–य–य युता सा मालिनी सुप्रसिद्धा)

लक्षण– 1 प्रत्येक चरण में 15 वर्ण।
2 8 और 7 वर्णों पर यति।
3 प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण ।

उदाहरण :

नगण नगण मगण यगण यगण
। । । । । । ऽ ऽ ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ
प्रमुदि त मथु रा के, मा नवों को बना के,
सकुशल रह के औ विध्न–बधा बचा के।
निज प्रिय सुत दोनों साथ लेके सुखी हो,
जिस दिन पलटेंगे गेह–स्वामी हमारे।।

•••

अलंकार

अर्थ और परिभाषा

"अलंकार " शब्द का अर्थ हैं– वह वस्तु जो सुंदर बनाए या सुंदर बनाने का साधन हो । साधारण बोलचाल में अलंकार आभूषण या गहने को कहते हैं। जैसे आभूषण धारण करने से नारी के शरीर की शोभा बढ़ती हैं वैसे ही अलंकार के प्रयोग से कविता की शोभा बढ़ती हैं। काव्य में अलंकारों के कार्य को लक्ष्य करके आचार्यों ने अलंकार का लक्षण इस प्रकार बताया हैं (1) कथन के असाधारण या चमत्कार पूर्ण प्रकारों को अलंकार कहते हैं। (2) शब्द और अर्थ का वैचित्र्य अलंकार हैं। (3) काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं। (4) काव्य की शोभा की वृद्धि करने वाले शब्दार्थ के अस्थिर धर्मों को अलंकार कहते हैं। वास्तव में अलंकार काव्य में शोभा उत्पन्न न कर के वर्तमान शोभा को ही बढ़ाते हैं।

इसलिए आचार्य विश्वनाथ ने लिखा हैं कि अलंकार शब्द–अर्थ–स्वरूप काव्य के अस्थिर धर्म है। और ये भावों एवं रसों का उत्कर्ष करते हुए वैसे ही काव्य की शोभा बढ़ाते हैं जैसे हार इत्यादि नारी की सुंदरता में चार चाँद लगा देते है।

काव्य की शोभा की बढ़ोतरी में अलंकार अनिवार्य रूप से सहायक नही हैं। अलंकारों के बिना भी कविता उत्तम कोटि की हो सकती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अलंकारों को भावों के उत्कर्ष में सहायक मात्र मानते हुए कहा है।

"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण, क्रिया का अधिक तीव्रता से अनुभव कराने में सहायक होने वाली उक्ति अलंकार है।"

अलंकार के प्रकार

काव्य शब्द और अर्थ रूपात्मक हैं। इसलिए अलंकार दो प्रकार के माने जाते हैं।

(1) शब्दालंकार– जहाँ उक्ति में चमत्कार (चारुता, सुन्दरता) शब्द पर निर्भर हो और।

(2) अर्थालंकार– जहाँ उक्ति में चमत्कार किसी शब्द पर निर्भर न होकर शब्द के अर्थ पर निर्भर हो ।

शब्दालंकार के उदाहरण

(1) हे उत्तरा के धन! रहो तुम उत्तरा के पास ही।

इसमें "उत्तरा" शब्द दो बार आने से यहाँ अनुप्रास का "लाटानुप्रास "प्रकार हैं।

(2) पानी गये न ऊबरै मोती,मानुस,चून।

इस पंक्ति में "पानी" शब्द के अनेक अर्थ होने से श्लेष अलंकार हैं।

अर्थालंकार के उदाहरण–

(1) मुख मयंक सम मंजु मनोहर।

यहाँ "म" वर्ण अनेक बार आया हैं। इसमें नाद–सौंदर्य की सृष्टि हुई, परन्तु यदि इस उदाहरण के शब्दों को बदलकर यों कर दिया जाए – सुन्दर बदन सुधाकर जैसे। तो भी उपमा

अलंकार ज्यों का त्यों बना रहेगा और बदले हुए शब्द भी मुख की सुंदरता का चित्र प्रस्तुत करते रहेंगे।

(2) "उदित उदय–गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग"

यहाँ 'उदयगिरि' को मंच और 'रघुवर' को बाल पंतग बताया गया हैं। अतः रूपक अलंकार हैं इस उक्ति के "बाल पतंग" शब्द को बदल कर उसके स्थान पर "बाल रवि" या "बालारुण" रख देने पर भी उक्ति का चमत्कार मिट नही जाएगा, किन्तु वह ज्यों का त्यों बना रहेगा। इसी प्रकार "उदयगिरि" को बदल कर उसके स्थान पर इसी अर्थ वाला "उदयाचल" शब्द रख देने पर भी उक्ति का चमत्कार नष्ट नही होगा। अतः इस उक्ति में चमत्कार का आधार शब्द नहीं हैं बल्कि सादृश्य–भावना है।

कतिपय प्रमुख अलंकार

(क) शब्दालंकार :

1. अनुप्रास

अनुप्रास शब्दालंकार है। अनुप्रास का अर्थ होता है कि बारंबार निकट रखना अर्थात् वर्णों का बार–बार प्रयोग। जहाँ कथन मे एक वर्ण या अनेक वर्ण जब दो या दो से अधिक बार एक ही क्रम में आए, भले ही उन वर्णों में स्वर की समानता न हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। इसके अनेक भेद कहे गए हैं : छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अन्त्यानुप्रास एवं लाटानुप्रास।

(क) छेकानुप्रास :

इसमें एक वर्ण या वर्ण–समूह की एक बार स्पष्टतः आवृत्ति होती है।

उदाहरण :

मोहनी मूरत साँवरी सूरत नैना बने बिसाल।

उक्त पंक्ति में ''म'', ''स'' और ''ब'' वर्णों की एक–एक बार आवृत्ति हुई है।

(ख) वृत्यनुप्रास :

इसमें एक वर्ण या वर्ण–समूह की अनेक (एक से अधिक) बार आवृत्ति होती है।

उदाहरण :

भव्य भावों में भयानक भावना भरना नहीं।

उक्त पंक्ति में ''भ'' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है।

(ग) श्रुत्यनुप्रास :

जब एक स्थान से उच्चरित होने वाले बहुत से वर्णों का प्रयोग किया जाए।

उदाहरण :

कलि केवल मलमूल मलीना।
पाप पयोनिधि जन मन मीना।।

उक्त पंक्ति में नासिका (म) और ओष्ठ (प) से उच्चरित वर्णों की आवृत्ति हुई है।

(घ) अन्त्यानुप्रास :

जब दो या अधिक शब्दों या वाक्यों अथवा छंदों के चरणों के अंत में अंतिम दो स्वरों की आवृत्ति हो। **उदाहरण** :–

तज प्राणों का मोह आज सब मिल कर आओ।
मातृ–भूमि के लिए बन्धुवर ! अलख जगाओ।।

उक्त पद्य के दोनों चरणों के अंत में अंतिम दोनों स्वरों (आ,ओ) की आवृत्ति हुई है। पहली पंक्ति में तो अंत में (आ,ओ) दो स्वर हैं ही, दूसरी पंक्ति में भी '' जगाओ'' में ग् + आ, ओ – ये दो स्वर हैं।

(ङ) लाटानुप्रास :

जब कोई शब्द अनेक (दो या दो से अधिक) बार आए और अर्थ अनेक बार एक ही हो, परन्तु अन्वय प्रत्येक बार भिन्न हो।

उदाहरण :

पूत सपूत तो क्यों धन संचै ?
पूत कपूत तो क्यों धन संचै ?

यहाँ पूत, तो, क्यों, धन और संचै – ये शब्द दो बार आए हैं। प्रथम बार सब का अन्वय सपूत के साथ है और दूसरी बार कपूत के साथ है।

2. यमक

जहाँ सार्थक किन्तु भिन्नार्थक या निरर्थक वर्ण समुदाय की एक से अधिक बार आवृत्ति की जाती है अर्थात् कोई शब्द अनेक बार आए और अर्थ प्रत्येक बार भिन्न हो, वहाँ यमक अलंकार होता है। जैसे :

(क) कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
या खाए बौराय जग वा पाए बौराय ।।
(यहाँ कनक के दो अर्थ हैं– धतूरा और सोना)

(ख) सुखद हो सकती न उलूक को,
नव विशारद शारद चन्द्रिका।
(यहाँ विशारद शब्द में 'शारद' निरर्थक है।)

3. श्लेष

जब वाक्य में एक शब्द केवल एक ही बार आए और उस शब्द के दो या अधिक अर्थ निकले तब श्लेष अलंकार होता है। जैसे :–

(क) **पानी गये न उबरै मोती मानुष चून।**

यहाँ रेखांकित पानी शब्द के मोती, मनुष्य और चून के संदर्भ में क्रमशः कांति, प्रतिष्ठा और जल तीन अर्थ हैं।

(ख) **चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न स्नेह गम्भीर ।**
को घटि यह वृषभानुजा वे हलधर के वीर।।

यहाँ 'वृषभानुजा' और 'हलधर के वीर' शब्दों में श्लेष है। 'वृषभानुजा' शब्द का अर्थ राधा एवं गाय है। 'हलधर के वीर' का अर्थ श्रीकृष्ण एवं बैल है।

4. वक्रोक्ति

जहाँ शब्द में श्लेष के कारण या काकु अथवा स्वर के भेद के कारण सुनने वाला व्यक्ति कहने वाले के शब्द का दूसरा अर्थ कल्पित कर ले वहाँ 'वक्रोकित' अलंकार होता है। जैसे :–

(क) **''कौ तुम ? हैं घनश्याम हम, तो बरसो कित जाय''**

यहाँ श्रीकृष्ण व राधिका का संवाद है। राधिका घर के भीतर से बाहर खड़े श्रीकृष्ण से पूछती है '' बाहर तुम कौन ?'' श्रीकृष्ण कहते हैं '' हम घनश्याम हैं। राधिका घनश्याम शब्द का श्लेष के कारण जल से भरा हुआ ''काला बादल'' अर्थ लगाकर उत्तर देती है– '' घनश्याम हो तो कहीं जाकर जल बरसाओ।

(ख) **विबुध पुण्यजन आप हैं, इस भूतल पर धन्य ।**
मैं न देव हूँ, यक्ष नहीं, मैं तो मनुज अनन्य।।

यहाँ 'विबुध' और 'पुण्यजन' दोनों ही शब्द श्लिष्ट हैं।

(ख) अर्थालंकार :

1. उपमा

जहाँ उपमेय और उपमान में भेद रहते हुए भी उपमेय के साथ उपमान के सादृश्य का वर्णन हो वहाँ उपमा अलंकार होता है। इस अलंकार में किसी एक वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाता है। उपमा के चार अंग होते हैं :–

(क) उपमेय (ख) उपमान (ग) समान धर्म और (घ) वाचक शब्द।

(क) उपमेय : जिस वस्तु की उपमान के साथ समानता का वर्णन होता है उस वस्तु को उपमेय कहा जाता है।

(ख) उपमान : जिस वस्तु के साथ उपमेय की समानता दिखाई जाती है वह वस्तु उपमान कहलाती है।

(ग) समान धर्म : उपमेय और उपमान में समान रूप से पाए जाने वाला धर्म (गुण) समान धर्म कहलाता है।

(घ) वाचक शब्द : उपमेय और उपमान को समान धर्म के साथ जोड़ने वाले शब्द को वाचक शब्द कहा जाता है।

जैसे : **(1) मुख कमल–सा खिल गया।**

उक्त उदाहरण में –

1. ''मुख'' उपमेय है।
2. ''कमल'' उपमान है।
3. ''खिल गया'' साधारण धर्म है।
4. ''सा'' वाचक शब्द है।

(2) पीपर पात सरिस मन डोला ।

(3) राम लखन सीता सहित, सोहत पर्ण निकेत।
जिमि बस बासव अमरपुर, सची जयन्त समेत।।

(4) यह विचार की पुतलिका–सी
विषम जगत की प्रतिच्छाया–सी।
विश्व चित्र–सी, सरित लहर–सी,
जीवन–सी, छल–सी, माया–सी।

2. रूपक

इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है। इससे इसका नाम ''रूपक'' पड़ा है। जहाँ उपमेय का उपमान के साथ अभेद आरोपित किया गया हो वहाँ रूपक अलंकार होता है। जैसे :

(1) उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।।

इसमें उगते हुए सूर्य (उपमान) और राम (उपमेय) में पूर्ण साम्य दिखाकर अभेद बताया है।

(2) हरि मुख पंकज ध्रुव धनुष, खंजन लोचन मित्त।
बिंब अधर , कुण्डल मकर, बसे रहत मो चित्त।।

इसमें उपमेय मुख, ध्रुव, लोचन, अधर व कुण्डल पर क्रमशः पंकज, धनुष, खंजन, बिंबफल व मकर उपमानों के एक अंग का ही आरोप है।

(3) जय जय जय गिरिराज किशोरी।
जय महेश मुख–चन्द्र चकोरी।।

उक्त उदाहरण में ''गिरिराज किशोरी'' को '' चकोरी'' और महेश के मुख को ''चन्द्र'' बताया गया है।

3. उत्प्रेक्षा

इस अलंकार में उपमेय को उपमान से भिन्न मानते हुए भी उपमेय में उपमान की बलपूर्वक संभावना की जाती है। जैसे :–

(1) कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये।

हिम कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये।।

इसमें आँसुओं से भरे हुए उत्तरा के नेत्रों से ओस कण–युक्त पंकजों की संभावना की गई है।

(2) सिर फट गया उसका वहाँ मानों अरुण रंग का घड़ा।

उक्त उदाहरण में फूटे हुए सिर में लाल रंग से भरे घड़े की ''मानो'' शब्द द्वारा संभावना की जाती है।

4. अतिशयोक्ति

''अतिशय कथन'' अतिशयोक्ति है।

जहाँ पर किसी वस्तु का वर्णन इतना बढ़ा–चढ़ाकर किया जाए कि वह लोक–मर्यादा का उल्लंघन कर जाए, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है अर्थात् किसी कथन को सामान्य रूप में प्रस्तुत न कर उसे बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाए। जैसे :–

(1) देखो दो–दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी।

(2) हनुमान की पूँछ में लगन न पाई आगि।
लंका सिगरी जल गई गए निसाचर भागि।।

(3) वह शर इधर गाण्डीव गुण से भिन्न जैसे ही हुआ।
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ।।

5. संदेह

जब सादृश्य के कारण एक वस्तु में अनेक वस्तुओं के होने की सम्भावना दिखाई पड़े और निश्चय न हो, वहाँ संदेह अलंकार होता है।

(1) हरि–मुख यह आली! किधौं, कैंधौं उगो मयंक ?

अर्थात् हे सखी! यह हरि का मुख है या चन्द्रमा उगा है ? यहाँ हरि के मुख को देखकर सखी को निश्चय नहीं होता कि यह हरि का मुख है या चन्द्रमा का।

(2) ये हैं सरस ओस की बूँदें, या हैं मंजुल मोती ?

(3) ये छींटे हैं उड़ते, अथवा मोती बिखर रहे हैं ?

(4) आः! बाण थे वे, या भयंकर पक्षधारी व्याल थे ?

6. भ्रांतिमान

जब सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम हो, अर्थात् जब उपमेय को भूल से उपमान समझ लिया जाय।

(1) जानि स्याम को स्याम–घन नाचि उठे बन मोर।

यहाँ मयूरों ने कृष्ण को वर्ण–सादृश्य के कारण श्याम मेघ (बादल) समझ लिया।

(2) ओस–बिन्दु चुग रही हंसिनी मोती उनको जान।

(3) बेसर–मोती–दुति–झलक परी अधर पर आनि।
पट पोंछति चूनो समुझि नारी निपट अयानि।। .....